सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

५

(१९०५–१९०६)

गांधीजी

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

५

(१९०५–१९०६)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

अगस्त १९६१ (श्रावण १८८३ शक)

साढ़े सात रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली-८ द्वारा प्रकाशित
और जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद-१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें जुलाई १९०५ से अक्तूबर १९०६ तक की सामग्री दी गई है। यह समय गांधीजीके व्यक्तिगत जीवन और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजके जीवनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तनोंका है। यद्यपि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी सेवाके व्रत और 'इंडियन ओपिनियन' के खर्चकी दृष्टिसे वे स्वयं अभीतक जोहानिसवर्गमें रहकर वैरिस्टरी कर रहे थे, फिर भी उनका फीनिक्स आश्रम सहयोगियोके लिए घर वन गया था। इन सहयोगियोंमें श्री वेस्ट जैसे कुछ यूरोपीय भी सम्मिलित थे। जोहानिसबर्गमे उनका पारिवारिक जीवन अपेक्षाकृत अधिक स्थिर हो गया था; सहयोगी और सहकारी भी परिवारके सदस्य थे। भोजनके वाद रातको वे तथा अन्य सदस्य धार्मिक अध्ययन और दार्शनिक चर्चा करते थे। अपने धन्धेके लिए उन्होंने जो सख्त आचार-नीति अपनाई थी उसके बावजूद उनकी वकालत वढ़ती गई। जीवनमें सादगीके साथ-साथ संयम और शारीरिक श्रमपर जोर बढ गया। घरसे दफ्तर तक का छ' मीलका फासला वे आते और जाते पैदल ही तय करते थे। उनके आहार-सम्बन्धी प्रयोग भी चलते रहे। अपने वड़े भाई श्री लक्ष्मीदासके नाम पत्र (मई २७, १९०६) में उन्होंने लिखा था, "कुछ भी मेरा है, यह मेरा दावा नही है। मेरे पास जो-कुछ भी है, वह सब लोक-सेवामें लगाया जा रहा है . . . मुझे किसी किस्मके दुनियाई सुख-भोगकी इच्छा बिलकुल नही है।"

सार्वजनिक कार्यकर्ताके जीवनमें ब्रह्मचर्यकी आवश्यकतापर उनका विश्वास अधिकाधिक वढ़ता गया — यह दूसरा महत्त्वपूर्ण विकास हुआ। तब उन्हें आत्मज्ञानकी दिशामे उसके उपयोगकी प्रतीति नही हुई थी। किन्तु जूलू विद्रोहके समय, जब उन्हे डोलीवाहक दलके साथ कठिन मंजिलोंपर जाना पड़ा, उन्होंने लिखा है: "मेरे मनमें विचार उदित हुआ कि यदि मैं इस तरह समाजकी सेवामें संलग्न होना चाहता हूँ तो मुझे धन और सन्तानकी इच्छा छोड़ देनी चाहिए और सांसारिक काम-काजसे अलग होकर वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करना चाहिए।" ('आत्मकथा', भाग ३, अध्याय ७) उन्हें विश्वास हो गया कि वे "आत्मा और शरीर दोनोंके लिए साथ-साथ नही जी सकते", और उन्होंने जीवनके ३७ वें वर्षमे आजन्म ब्रह्मचर्यका व्रत ले लिया। अन्ततः उन्हे सितम्बर ११, १९०६ की सार्वजनिक सभामे उस व्रतकी सुन्दरता और शक्तिका साक्षात्कार हुआ, जो ईश्वरको साक्षी रखकर बुरे कानूनके सामने न झुकनेके कारण मिलनेवाले दण्डको झेलनेके लिए लिया गया था; और उसी दिन उस सिद्धान्तका जन्म हुआ जो वादमें "सत्याग्रह" कहलाया।

उनके हाथोंमें 'इंडियन ओपिनियन' उनके प्रभावकी उत्तरोत्तर वृद्धिका साधन बन गया था। विशेषत. गुजराती विभागके द्वारा उन्होंने दक्षिण आफ्रिकी भारतीय समाजको आत्म-संयम, स्वच्छता और अच्छी नागरिकता सिखाने और सत्याग्रहके योग्य वनानेका प्रयत्न किया। उसमें उन्होने टॉलस्टॉय, लिंकन, मैज़िनी, एलिजावेथ फ्राइ, फ्लॉरेन्स नाइटिंगेल, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और टी० माधवराव जैसे महान् पुरुषो और स्त्रियोंके जीवन-चरित लिखकर अपने पाठकोंको अनुप्रेरित करनेका प्रयास किया। कुछ व्यावहारिक कठिनाइयोके कारण बादमे उन्हें 'इंडियन ओपिनियन' के हिन्दी और तमिल विभाग वन्द कर देने पड़े। छगनलाल गांधीको लिखे उनके पत्रोसे प्रकट होता है कि वे उक्त पत्रकी सामग्री, स्तर और रूप-विन्यास आदिके बारेमें तफसीलसे हिदायतें देते थे। पत्रका आर्थिक संकट अभीतक बना हुआ था और गांधीजीको उसके लिए समाजसे अधिकाधिक सहयोगकी अपील करनी पड़ती थी।

उन्होंने बार-बार ब्रिटिश भारतीय संघके माध्यमसे ट्रान्सवालके भारतीय समाजकी समस्याओंको लेकर जोरदार शब्दोंमें निवेदन प्रस्तुत किये। उदाहरणार्थ, ट्रान्सवाल लौटनेवाले भारतीय शरणार्थियोंसे उन्हें जाननेवाले यूरोपीयोंके नाम पूछनेकी प्रथा और ट्रामगाड़ियों तथा रेलगाड़ियों द्वारा भारतीयोंके सफरपर लगे हुए कठोर प्रतिबन्धों की उन्होंने आलोचना की। जब मार्च १९०६ में संविधान-समितिकी नियुक्ति हुई, तब गांधीजीके नेतृत्वमें संघने जोरदार तरीकेसे उसके सामने भारतीय दृष्टिकोण रखा। अनुमतिपत्रोंकी समस्या इतनी तीव्र हो गई थी कि संघने कतिपय परीक्षात्मक मुकदमे दायर करना भी तय किया। किन्तु चरम-स्थिति तब आई जब लॉर्ड मिलनरके आश्वासनपर स्वेच्छापूर्वक दुबारा पंजीयन करा लेनेके बाद भी सरकारने भारतीयोंको तीसरी बार पंजीयन करानेके लिए बाध्य करनेका कानून बनाना निश्चित किया। जिस दिन एशियाई अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित हुआ उसी दिनसे दक्षिण आफ्रिकामें घटनाओंकी गति बढ गई। अगस्त २५, १९०६ को ब्रिटिश भारतीय संघने अध्यादेशका विरोध किया। ८ सितम्बरको गांधीजीने 'इंडियन ओपिनियन' में अध्यादेशकी भर्त्सना करते हुए उसे "मानवताके विरुद्ध अपराध" कहा; साथ ही उसे सरकारका भारतीयोंको ट्रान्सवालसे भगानेका तरीका घोषित किया। गांधीजीने "खूनी कानून" के विषैले प्रभावोंको स्पष्ट किया और लोगोंसे फिर पंजीयन न करानेका अनुरोध किया। ११ सितम्बरकी सार्वजनिक सभा एक युगान्तरकारी घटना थी। प्रसिद्ध चौथे प्रस्तावकी सिफारिश करते हुए गांधीजीने अध्यादेशके सम्मुख न झुकने और परिणामस्वरूप जेल जानेके लिए समाजका आह्वान किया। सारी परिस्थितियोंसे समाज बहुत व्यग्र हो उठा था और यह तय किया गया कि साम्राज्य-सरकारके सामने भारतीय दृष्टिकोण पेश करनेके लिए एक शिष्टमण्डल इंग्लैंड भेजा जाये।

नेटालके भारतीयोंके सामने भी अपनी समस्याएँ थी। भारतीयोंके व्यापारिक परवाने फिरसे जारी करनेसे इनकार करना मामूली और रोजमर्रेकी बात हो गई थी। गांधीजीने इस परिस्थितिको गोरों और भारतीयोंके बीच स्पष्ट स्पर्धा माना। दादा उस्मानके मामलेकी अपील उपनिवेश-मन्त्रीके सामने की गई। डर्बन नगर-परिषदने भारतीय व्यापारियों और फेरीवालोंको नये परवाने जारी न करनेका निश्चय किया। इसके पहले गांधीजीने सुझाव रखा था कि परवानोंके मामलोंकी जाँच-पड़तालके लिए नेटाल भारतीय कांग्रेस एक समिति बनाये। दूसरी परेशानियाँ भी थी; जैसे १६ वर्षसे अधिक उम्रके भारतीयोंपर १ पौंडका कर लाद दिया गया था; पासों और प्रमाणपत्रोंपर प्रतिषेधात्मक शुल्क लगा दिये गये थे। इस प्रकार इंग्लैंडको शिष्टमण्डल भेजना एक अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत हुई और नेटाल भारतीय कांग्रेसने गांधीजीको भेजना तय किया। किन्तु जब फरवरी १९०६ में जूलू-विद्रोह भड़क उठा तब गांधीजीने तमाम भारतीय शिकायतोंपरसे ध्यान हटा लिया और न केवल भारतीयोंको आहत सहायकोंके रूपमें अपनी सेवाएँ प्रदान करनेका औचित्य समझाया, बल्कि वास्तवमें नेटाल सरकारके सामने ऐसा प्रस्ताव भी पेश किया, जिसे मईके अन्ततक उसने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार शिष्टमण्डल मुल्तवी हुआ और गांधीजीने अपने १९ सहयोगियोंके साथ लगभग छः हफ्तों तक डोली-वाहकके रूपमें काम किया।

जुलाईमे गांधीजी मोर्चेसे लौट आये। उन्होंने लौटकर देखा कि सरकार अभीतक अनिवार्य पुनः पंजीयनके प्रस्तावपर दृढ़ है, जिससे प्रश्नने पहलेसे भी अधिक गम्भीर रूप धारण कर लिया है। कुछ हफ्तों तक गांधीजी इसको लेकर व्यस्त रहे। लॉर्ड सेल्बोर्नने एशियाई अध्यादेशके बारेमें भारतीय पक्षको मंजूर करनेसे इनकार कर दिया और लॉर्ड एलगिनने अपना यह विचार व्यक्त किया कि शिष्टमण्डल भेजनेसे कोई लाभ नही होगा। किन्तु इससे भारतीय समाजका गांधीजी और अलीको इंग्लैंड भेजनेका निश्चय और भी दृढ़ हो गया। एक अन्तिम बैठकमें

गांधीजी जानेके लिए तैयार हो गये, किन्तु उन्होंने पहले प्रमुख भारतीयोंसे यह वचन ले लिया कि वे पुनः पंजीयन कराना मंजूर नहीं करेंगे। उनके विचारमें भारतीय समाजके लिए वह समय कसौटीका था। इंग्लैंड जाते समय जहाजपर भी वे संघर्षके बारेमे ही विचार करते रहे और वहाँसे 'इंडियन ओपिनियन' के लिए उन्होंने जो लेख भेजे उनमें से एकमें संघर्षके विधि-निषेधका ब्यौरा दिया।

दक्षिण आफ्रिकाके सामने जो बड़े-बड़े प्रश्न थे उनपर अपना मत स्पष्ट करनेमें गांधीजी कभी नहीं चूके। खदानोमे काम करनेवाले चीनी मजदूरोके प्रति कठोर बर्तावकी उन्होंने निस्संकोच भर्त्सना की। जब ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीका नया विधान बननेवाला था तब "रंगदार" लोगोने उस संविधानके अन्तर्गत मताधिकार पानेके लिए प्रार्थनापत्र दिये। गांधीजीने उस आन्दोलनके साथ पूरी सहानुभूति दिखाई।

इस अवधिमे गांधीजीने ट्रान्सवाल और नेटालके प्रमुख समाचारपत्रोमें अनेक लेख लिखे। 'नेटाल मर्क्युरी' के आमन्त्रणपर जून १९०६ मे उन्होंने भारतीयोकी मुख्य-मुख्य शिकायतों और उनके निराकरणके उपायोंका संक्षिप्त तथा सुस्पष्ट ब्यौरा दिया। 'रैंड डेली मेल' को लिखे पत्रमे उन्होने भारतीयोके लिए पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रताकी माँग की। जब पूनिया नामकी एक भारतीय स्त्रीपर इसलिए मुकदमा चलाया गया कि उसके पास अलग अनुमतिपत्र नही था तब उन्होंने अखबारोमे उसके विरुद्ध लिखकर जबर्दस्त हलचल पैदा कर दी, जिससे सरकारी पक्षका खोखलापन तो जाहिर हुआ ही, वहाँके अखबारोको वह वक्तव्य भी वापस लेना पडा जिसमें दक्षिण आफ्रिकामे रहनेवाली भारतीय स्त्रियोंको लांछित किया गया था।

गांधीजी भारतीयोंके साथ बरती जानेवाली भेद-नीतिके विरुद्ध आन्दोलन चलानेके अतिरिक्त उनका रचनात्मक मार्गदर्शन भी करते रहते थे। जब नेटाल-सरकारने स्थानीय रूपसे वस्तुओंके निर्माणकी सम्भावनाकी जाँचके लिए एक आयोग बिठाया, तब उन्होंने भारतीय व्यापारियोंको उसके सामने गवाही देनेके लिए प्रेरित किया। बड़ौदाकी शैक्षणिक प्रगतिके उदाहरण देकर और गोखलेके सुझावोंका समर्थन करके वे भारतीयोंको शिक्षण प्राप्त करनेकी आवश्यकता निरन्तर समझाते रहते थे। दक्षिण आफ्रिकामे भारतीय व्यापार-संघकी स्थापनाके प्रस्तावका भी उन्होंने अनुमोदन किया था।

भारतकी घटनाओंसे भी वे घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रहे। भारतकी आवश्यकताएँ सदा उनके ध्यानमें रहती थी। उन्होंने नमक-कर समाप्त करनेकी माँग की। वंग-भंग आन्दोलनके तीव्र होनेपर उन्होने संयुक्त विरोध और अंग्रेजी मालके बहिष्कारका आह्वान किया। स्वदेशी आन्दोलनकी प्रगतिपर प्रसन्नता प्रकट की और साम्प्रदायिक एकताकी आवश्यकतापर जोर दिया। उन्होंने 'वन्दे मातरम्' को भारतका राष्ट्र-गीत और देशको एक राष्ट्र बनानेके लिए हिन्दुस्तानीको राष्ट्र-भाषा स्वीकार करनेकी सलाह दी। भारतीय नेतागण भारतमें जो-कुछ कर रहे थे उसपर वे ध्यान रखते रहे और कांग्रेसकी अध्यक्षताके लिए उन्होंने श्री गोखलेके निर्वाचनका समर्थन किया। "साम्राज्यका अविभाज्य अंग" होनेके नाते उन्होंने भारतकी आकांक्षाओंपर अधिक गहराईसे सोचनेकी आवश्यकता बताई और न्याय तथा मानवताके नामपर स्वराज्य (होम-रूल) की माँग पेश की।

वे बाहरी दुनियाकी महत्त्वपूर्ण घटनाओंपर भी नजर रखते रहे। निर्वाचनके सिद्धान्तोंपर आधारित नये रूसी विधानको उन्होंने प्रगतिकी दिशामे एक कदम माना। १९०५ की क्रान्तिके विषयमे उन्होने कहा कि यदि यह क्रान्ति सफल हो गई तो "इस शताब्दीकी सबसे बड़ी विजय

और सबसे बड़ी घटना" मानी जायेगी। जापानकी महानताका श्रेय उन्होंने उसके द्वारा मिकाडोके शिक्षा-सम्बन्धी आदेशोंके निष्ठापूर्ण पालन और सेनाके आचारको दिया।

यह खण्ड उस विस्तृत भूमिकाको प्रस्तुत करता है जिसमें गांधीजीने वानप्रस्थ जीवन अपनाया और वे मानव-समाजके ऐसे मार्गदर्शकके रूपमें प्रकट हुए जिसे इस बातकी प्रतीति हो गई थी कि "किसी नये तत्त्वका आविर्भाव हुआ है।" यह तत्त्व था — सत्याग्रह; संवैधानिक आन्दोलनका पूर्ण संतोष प्रदान करनेवाला निर्मल विकल्प।

पाठकोंको सूचना

इस खण्डमें कुछ ऐसे प्रार्थनापत्र सम्मिलित किये गये है जिनपर यद्यपि दूसरोंके हस्ताक्षर है, तथापि वे गांधीजीके लिखे हुए माने गये हैं। इसके कारण खण्ड १ की भूमिकामें स्पष्ट किय जा चुके हैं। ये प्रार्थनापत्र गाधीजीके आत्मकथा-सम्बन्धी लेखोंके सामान्य साक्ष्य, उनके सहयोगी श्री एच० एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीकी सम्मति तथा अन्य उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर 'इंडियन ओपिनियन' से लिये गये हैं।

अंग्रेजी तथा गुजराती सामग्रीसे अनुवाद करनेमें हिन्दीको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है। किन्तु साथ ही अनुवादको सुपाठ्य बनानेका भी ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारकर अनुवाद किया गया है और मूलमें व्यवहृत शब्दोके संक्षिप्त रूप हिन्दीमें पूरे करके दिये गये हैं। नामोंको लिखनेमें सामान्यतः प्रचलित उच्चारणोंका ध्यान रखा गया है। शंकास्पद उच्चारणोंके सम्बन्धमें गांधीजीके गुजरातीमें लिखे गये उच्चारणको स्वीकार किया गया है।

प्रत्येक शीर्षककी लेखन-तिथि, यदि वह उपलब्ध है, दाहिने कोनेमें ऊपर दी गई है। यदि मूलमे कोई तिथि नहीं है तो चौकोर कोष्ठकोंमें अनुमानित तिथि दे दी गई है; और जहाँ जरूरी समझा गया है वहाँ उसका कारण भी बता दिया गया है। सूत्रके साथ अन्तमें दी गई तिथि प्रकाशन की है।

मूलकी भूमिकामें छोटे टाइपमें और मूल सामग्रीके भीतर चौकोर कोष्ठकोंमें जो-कुछ सामग्री दी गई है, वह सम्पादकीय है। मूलमें आये गोल कोष्ठकोको कायम रखा गया है। गाधीजी द्वारा उद्धृत अनुच्छेद हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमे छापे गये हैं।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' और 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' के विभिन्न संस्करणोमें पृष्ठ-सख्याकी भिन्नताके कारण, जहाँ आवश्यक हुआ है, केवल भाग और अध्यायका ही हवाला दिया गया है।

साधन-सूत्रोंमें एस० एन० संकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदावादमें उपलब्ध कागजपत्रोका सूचक है। इसी प्रकार जी० एन० गाधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका तथा सी० डब्ल्यू० सम्पूर्ण गाधी वाङ्मय द्वारा प्राप्त कागजपत्रोंका सूचक है। सामग्रीके सूत्रोंमें यदा-कदा जो संकेत आये है, उनमे "सी० एस० ओ०" कलोनियल सेक्रेटरीके ऑफिस के लिए, "सी० ओ०" कलोनियल ऑफिसके लिए तथा "एल० टी० जी०" या "एल० जी०" लेफ्टिनेंट गवर्नरके लिए आये हैं।

इस खण्डकी सामग्रीके साधन-सूत्र और सम्बन्धित अवधिका तारीखवार वृत्तान्त पुस्तकके अन्तमें दिये गये हैं।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक ट्रस्ट और संग्रहालय, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय और नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि तथा संग्रहालय और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, नई दिल्ली; भारत सेवक समिति, पूना; कलोनियल ऑफिस पुस्तकालय तथा इंडिया ऑफिस पुस्तकालय, लन्दन; फीनिक्स आश्रम, डर्बन; प्रिटोरिया आर्काइव्ज, प्रिटोरिया; नगर-परिषद, क्रूगर्सडॉर्प; श्री दी० गो० तेंडुलकर तथा 'महात्मा' के प्रकाशक; श्रीमती सुशीलाबहन गांधी तथा झवेरी परिवार, डर्बन; श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री अरुण गांधी, बम्बई; तथा 'इंडियन ओपिनियन', 'इंडिया', 'नेटाल मर्क्युरी', 'रैंड डेली मेल', 'स्टार' और 'ट्रान्सवाल लीडर' समाचारपत्रोंके आभारी हैं।

अनुसन्धान तथा सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, केन्द्रीय सचिवालय पुस्तकालय तथा संयुक्त राज्य सूचना-सेवा पुस्तकालय, नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; सार्वजनिक पुस्तकालय, जोहानिसबर्ग; और ब्रिटिश म्यूज़ियम पुस्तकालय, लन्दन हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

विषय-सूची

भूमिका ५
पाठकोंको सूचना ९
आभार १०
चित्र-सूची २४
१. नेटालके विधेयक (१-७-१९०५) १
२. श्री ब्रॉड्रिक और ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय (१-७-१९०५) २
३. लॉर्ड सेल्बोर्न और स्वशासन (१-७-१९०५) ४
४. सरकारी नौकरियोंमें भेद-भाव (१-७-१९०५) ४
५. मैक्सिम गोर्की (१-७-१९०५) ५
६. सिंगापुरमें चीनी और भारतीय (१-७-१९०५) ६
७. पत्र : उच्चायुक्तके सचिवको (१-७-१९०५) ६
८. पत्र : कैखुसरू व अब्दुल हकको (३-७-१९०५) ७
९. ऑरेंज रिवर उपनिवेशके कानून (८-७-१९०५) ८
१०. चीनी और गन्दी भाषा (८-७-१९०५) ९
११. भारतमें नमकपर कर (८-७-१९०५) १०
१२. पत्र . दादा उस्मानको (८-७-१९०५) १०
१३. पत्र : पारसी कावसजीको (८-७-१९०५) ११
१४ पत्र : जे० डी विलियर्सको (१२-७-१९०५) ११
१५. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (१३-७-१९०५) १२
१६ पत्र : जालभाई व सोराबजी ब्रदर्सको (१३-७-१९०५) १३
१७. पत्र : हाइन व कारूथर्सको (१३-७-१९०५) १४
१८. पत्र : उमर हाजी आमदको (१३-७-१९०५) १५
१९ पत्र : टाउन क्लार्कको (१४-७-१९०५) १५
२०. केप प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (१५-७-१९०५) १६
२१. श्री वाछा और भारतीय (१५-७-१९०५) १७
२२. नेटालमें मकान-कर (१५-७-१९०५) १७
२३ जापान द्वारा सन्धिकी तैयारी (१५-७-१९०५) १८
२४. पत्र : छगनलाल गांधीको (१५-७-१९०५) १९
२५. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको (१७-७-१९०५) २०
२६. पत्र : हाजी इस्माइल हाजी अबूबकरको (१७-७-१९०५) २०
२७. पत्र : 'डेली एक्सप्रेस'को (१७-७-१९०५ के बाद) २१
२८. पत्र : रेवाशंकर झवेरीको (१८-७-१९०५) २३
२९. पत्र : रविशंकर भट्टको (२१-७-१९०५) २३
३०. पत्र : मेघराज व मूडलेको (२१-७-१९०५) २४
३१. पत्र : कैप्टन फॉउलको (२१-७-१९०५) २५

३२. श्री ब्रॉड्रिकका बजट (२२–७–१९०५) २५
३३. ट्रान्सवालमें एशियाई बाजार (२२–७–१९०५) २७
३४. एक गुप्त बैठक (२२–७–१९०५) २८
३५. क्रूगर्संडॉर्पके भारतीय (२२–७–१९०५) २९
३६. ट्रान्सवालमें भारतीय होटल (२२–७–१९०५) २९
३७. जोजेफ़ मैजिनी (२२–७–१९०५) ३०
३८. ट्रान्सवाल आनेवाले भारतीयोंको महत्त्वपूर्ण सूचना (२२–७–१९०५) ३१
३९. पत्र : बीमा कम्पनीके एजेंटको (२५–७–१९०५) ३२
४०. क्रूगर्संडॉर्पमें भारतीय (२९–७–१९०५) ३२
४१. ट्रान्सवालमें अनुमतिपत्र (२९–७–१९०५) ३३
४२. बाल्टिकके बेड़ेका रहस्य (२९–७–१९०५) ३३
४३. नेटालके गिरमिटिया भारतीय (५–८–१९०५) ३४
४४. जापान कैसे जीता? (५–८–१९०५) ३५
४५. पत्र : दादा उस्मानको (५–८–१९०५) ३५
४६. पत्र : कुमारी बिसिक्सको (५–८–१९०५) ३६
४७. पत्र : उमर हाजी आमदको (५–८–१९०५) ३६
४८. पत्र : अब्दुल हक व कैखुसरूको (५–८–१९०५) ३७
४९. पत्र : मुख्य अनुमतिपत्र-सचिवको (८–८–१९०५) ३७
५०. पत्र : अब्दुल हकको (८–८–१९०५) ३८
५१. पत्र : तैयब हाजी खान मुहम्मदको (८–८–१९०५) ३९
५२. पत्र : हाजी हबीबको (९–८–१९०५) ३९
५३. पत्र : अब्दुल कादिरको (१०–८–१९०५) ४०
५४. पत्र : पर्क्स लिमिटेडको (११–८–१९०५) ४१
५५. कदम-ब-कदम (१२–८–१९०५) ४२
५६. नेटालके नये कानून (१२–८–१९०५) ४३
५७. ट्रान्सवालमें वतनियोंको जमीनका अधिकार (१२–८–१९०५) ४३
५८. इंग्लैंड और जापानके बीच सन्धि (१२–८–१९०५) ४४
५९. पत्र : तैयब हाजी खान मुहम्मद ऐंड कम्पनीको (१२–८–१९०५) ४४
६०. पत्र : हाजी हबीबको (१४–८–१९०५) ४५
६१. पत्र : मुख्य अनुमतिपत्र-सचिवको (१५–८–१९०५) ४६
६२. पत्र : अब्दुल रहमानको (१६–८–१९०५) ४६
६३. क्या भारत जागेगा? (१९–८–१९०५) ४७
६४. सर मंचरजी और श्री लिटिलटन (१९–८–१९०५) ४८
६५. एलिजाबेथ फ्राइ (१९–८–१९०५) ४८
६६. ब्रिटिश संघ : एक सुझाव (२६–८–१९०५) ४९
६७. लॉर्ड कर्जन (२६–८–१९०५) ५०
६८. प्रोफेसर परमानन्द (२६–८–१९०५) ५१
६९. विश्व-धर्म (२६–८–१९०५) ५२
७०. रूसका नया संविधान (२६–८–१९०५) ५४

७१. अब्राहम लिंकन (२६-८-१९०५) ५४
७२. पत्र : गवर्नरके निजी सचिवको (३०-८-१९०५) ५६
७३. पत्र : मुख्य अनुमतिपत्र-सचिवको (१-९-१९०५) ५७
७४. नेटालके काफिर (२-९-१९०५) ५८
७५. काउंट टॉल्स्टॉय (२-९-१९०५) ५९
७६. जापानकी उन्नति (२-९-१९०५) ६०
७७. पत्र : शिक्षा-मन्त्रीको (५-९-१९०५) ६१
७८. सन्धिपत्र (९-९-१९०५) ६३
७९. चीनी खान-मजदूरोंपर अत्याचार (९-९-१९०५) ६३
८०. फ्लॉरेन्स नाइटिंगेल (९-९-१९०५) ६५
८१. स्वर्गीय कुमारी मैनिंग (१६-९-१९०५) ६६
८२. आगामी कांग्रेसका अध्यक्ष कौन? (१६-९-१९०५) ६७
८३. बड़ौदाके महाराजा गायकवाड़ और उनके दीवान (१६-९-१९०५) ६७
८४. ब्रिटिश मध्य आफ्रिकाके सम्बन्धमें समाचार (१६-९-१९०५) ६८
८५. इटलीमें भूकम्प (१६-९-१९०५) ६८
८६. चीनी और भारतीय : एक तुलना (१६-९-१९०५) ६९
८७. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१६-९-१९०५) ७०
८८. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके निजी सचिवको (१६-९-१९०५) ७३
८९. हुंडामलके मामलेकी फिर चर्चा (२३-९-१९०५) ७६
९०. श्री गाँश और भारतीय (२३-९-१९०५) ७७
९१. ऑरेंज रिवर उपनिवेशके भारतीय (२३-९-१९०५) ७८
९२. उपनिवेशमें उत्पन्न प्रथम भारतीय बैरिस्टर (२३-९-१९०५) ७९
९३. ट्रान्सवालमें अनुमतिपत्र सम्बन्धी विनियम (२३-९-१९०५) ८०
९४. पत्र : छगनलाल गांधीको (२३-९-१९०५) ८१
९५. पत्र : छगनलाल गांधीको (२७-९-१९०५) ८२
९६. पत्र : छगनलाल गांधीको (२९-९-१९०५) ८३
९७. ट्रान्सवालमें कानून बनानेकी सरगरमी (३०-९-१९०५) ८४
९८. केप प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (३०-९-१९०५) ८६
९९. चीनी और अमेरिकी (३०-९-१९०५) ८७
१००. नेटालमें उद्योगोंको प्रोत्साहन देनेका आन्दोलन (३०-९-१९०५) ८७
१०१. नेटालकी पाठशालाएँ (३०-९-१९०५) ८८
१०२. जोहानिसबर्गवासियोंको सूचना (३०-९-१९०५) ८८
१०३. जॉर्ज वाशिंगटन (३०-९-१९०५) ८९
१०४. पत्र : छगनलाल गांधीको (३०-९-१९०५) ९०
१०५. पत्र : छगनलाल गांधीको (२-१०-१९०५) ९१
१०६. पत्र : छगनलाल गांधीको (५-१०-१९०५) ९२
१०७. पत्र : छगनलाल गांधीको (६-१०-१९०५) ९३
१०८ भारतमें अनिवार्य शिक्षा (७-१०-१९०५) ९४
१०९. भारतके 'पितामह' (७-१०-१९०५) ९६

११०. सर मंचरजीका अपमान (७–१०–१९०५) ९६
१११. बहिष्कार (७–१०–१९०५) ९७
११२. डॉक्टर बरनार्डो (७–१०–१९०५) ९७
११३. एक भारतीय कवि (७–१०–१९०५) ९९
११४. पत्र : छगनलाल गांधीको (७–१०–१९०५) ९९
११५. मानपत्र : लॉर्ड सेल्बोर्नको (९–१०–१९०५ से पूर्व) १००
११६. पॉचेफस्ट्रूमके भारतीयोंका वक्तव्य (९–१०–१९०५ से पूर्व) १०१
११७. लॉर्ड सेल्बोर्न और ट्रान्सवालके भारतीय (१४–१०–१९०५) १०३
११८. लॉर्ड सेल्बोर्नका आगमन (१४–१०–१९०५) १०४
११९. गिल्टीवाला प्लेग (१४–१०–१९०५) १०५
१२०. नमक-कर (१४–१०–१९०५) १०५
१२१. सर हेनरी लॉरेंस (१४–१०–१९०५) १०६
१२२. पत्र : छगनलाल गांधीको (१८–१०–१९०५) १०८
१२३. परवानेका एक और मामला (२१–१०–१९०५) १०८
१२४. सिगरेटसे हानि (२१–१०–१९०५) ११०
१२५. राजा सर टी० 'माधवराव (२१–१०–१९०५) ११०
१२६. मानपत्र: प्रोफेसर परमानन्दको (२७–१०–१९०५) ११३
१२७. जोहानिसबर्गमें प्लेगका इतिहास (२८–१०–१९०५) ११४
१२८. भूल-सुधार (२८–१०–१९०५) ११५
१२९. नेल्सन-शताब्दी महोत्सव : एक सबक (२८–१०–१९०५) ११७
१३०. विक्रेता-परवाना अधिनियम (२८–१०–१९०५) ११८
१३१. बहादुर बंगाली (२८–१०–१९०५) ११९
१३२. हमारा कर्तव्य (२८–१०–१९०५) ११९
१३३. आस्ट्रेलिया और जापान (२८–१०–१९०५) १२०
१३४. एक जागरूक भारतीय (२८–१०–१९०५) १२१
१३५. इंग्लैंड कैसे जीता (२८–१०–१९०५) १२१
१३६. चायसे हानियाँ (२८–१०–१९०५) १२३
१३७. सर टॉमस मनरो (२८–१०–१९०५) १२४
१३८. दुःखद प्रसंग (४–११–१९०५) १२५
१३९. फूट डालो और राज करो (४–११–१९०५) १२६
१४०. दादा उस्मानकी अपील (४–११–१९०५) १२७
१४१. लॉर्ड मेटकाफ़ (४–११–१९०५) १२९
१४२. पत्र : छगनलाल गांधीको (६–११–१९०५) १३१
१४३. तार : सम्राट्को (९–११–१९०५ से पूर्व) १३३
१४४. सम्राट् चिरजीवी हों! (११–११–१९०५) १३३
१४५. इंग्लैंड जानेवाला भारतीय प्रतिनिधिमण्डल (११–११–१९०५) १३४
१४६. नेटालका प्रवासी-अधिनियम (११–११–१९०५) १३६
१४७. लाल फीता (११–११–१९०५) १३६
१४८. रूस और भारत (११–११–१९०५) १३७

१४९. सर टी० मुतुस्वामी ऐयर, के० सी० आई० ई० (११-११-१९०५) १३९
१५०. भारतीय स्वयसेवक-दल (१८-११-१९०५) १४०
१५१. बन्दरगाहमे भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहार (१८-११-१९०५) १४१
१५२. जोहानिसबर्गमें भारतीय बस्ती (१८-११-१९०५) १४२
१५३. ट्रान्सवालके भारतीयोको अनुमतिपत्रके सम्बन्धमे सूचना (१८-११-१९०५) १४२
१५४. जापान और ब्रिटिश उपनिवेश (१८-११-१९०५) १४३
१५५. केपका प्रवासी-कानून (१८-११-१९०५) १४३
१५६. माउटस्टुअर्ट एलफ़िन्स्टन (१८-११-१९०५) १४४
१५७. तार. सर आर्थर लालीको (२४-११-१९०५ के बाद) १४६
१५८. व्यक्ति-कर (२५-११-१९०५) १४६
१५९. श्री हैरी स्मिथ और भारतीय (२५-११-१९०५) १४७
१६०. बदरुद्दीन तैयबजी (२५-११-१९०५) १४९
१६१. शिष्टमण्डल : लॉर्ड सेल्वोर्नकी सेवामे (२९-११-१९०५) १५०
१६२. कटौती और व्यक्ति-कर (२-१२-१९०५) १५९
१६३ सर आर्थर लाली मद्रासके गवर्नरके रूपमें (२-१२-१९०५) १६०
१६४. भारतीय स्वय-सैनिक (२-१२-१९०५) १६०
१६५. डर्बन निगमके भारतीय कर्मचारी (२-१२-१९०५) १६१
१६६. हालका सुधार (२-१२-१९०५) १६१
१६७. पीली चमडीपर हमला (२-१२-१९०५) १६२
१६८. नेटाल प्रवासी-अधिनियम (२-१२-१९०५) १६२
१६९. वन्देमातरम् वंगालका गौर्यमय गीत (२-१२-१९०५) १६२
१७०. लॉर्ड सेल्वोर्न और ब्रिटिश भारतीय (९-१२-१९०५) १६४
१७१. उद्धरण. दादाभाई नौरोजीके नाम पत्रसे (११-१२-१९०५) १६५
१७२ केपका प्रवासी-अधिनियम (१६-१२-१९०५) १६६
१७३. मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेल-प्रणाली और यात्री (१६-१२-१९०५) १६७
१७४. लन्दन भारतीय समाज और प्रोफेसर गोखले (१६-१२-१९०५) १६८
१७५. ट्रान्सवालके अनुमतिपत्र (१६-१२-१९०५) १६९
१७६. पत्र छगनलाल गाधीको (२१-१२-१९०५) १७०
१७७ पत्र : उच्चायुक्तके सचिवको (२२-१२-१९०५) १७१
१७८. फसल (२३-१२-१९०५) १७१
१७९. नेटाल-सरकार रेल-प्रणाली और भारतीय (२३-१२-१९०५) १७४
१८०. केपके भारतीय व्यापारी (२३-१२-१९०५) १७४
१८१. हिन्दू-मुसलमानोके बीच समझौता (२३-१२-१९०५) १७५
१८२. ईश्वरकी लीला अद्‌भुत है (२३-१२-१९०५) १७५
१८३. पर्यवेक्षण (३०-१२-१९०५) १७६
१८४. ऑरेंज रिवर कालोनी (३०-१२-१९०५) १७८
१८५. हीडेलबर्गकी जमातमे फूट और मारपीट (३०-१२-१९०५) १७९
१८६. वतनियोमे शिक्षण-कार्य (३०-१२-१९०५) १८०
१८७. चीनकी जागृति (३०-१२-१९०५) १८१

१८८. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (३-१-१९०६) १८१
१८९. पत्र : म० ही० नाजरको (५-१-१९०६) १८२
१९०. भविष्यकी थाह (६-१-१९०६) १८३
१९१. ब्रिटिश भारतीयोंका दर्जा (६-१-१९०६) १८४
१९२. ऑरेंज रिवर कालोनीमें भारतीय (६-१-१९०६) १८५
१९३. व्यक्ति-करकी अदायगी (२०-१-१९०६) १८६
१९४. मनसुखलाल हीरालाल नाजर (२७-१-१९०६) १८७
१९५. काले और गोरे लोग (३-२-१९०६) १९०
१९६. सर डेविड हंटर (३-२-१९०६) १९१
१९७. हमारे तमिल और हिन्दी स्तम्भ (३-२-१९०६) १९१
१९८. ईरानके शाह (३-२-१९०६) १९२
१९९. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (९-२-१९०६) १९३
२००. पत्र : टाउन क्लार्कको (१०-२-१९०६) १९४
२०१. ईसाइयों और मुसलमानोंके सम्बन्धमें लॉर्ड सेल्बोर्नके विचार (१०-२-१९०६) १९५
२०२. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय (१०-२-१९०६) १९६
२०३. पत्र : छगनलाल गांधीको (१३-२-१९०६) १९७
२०४. पत्र : टाउन क्लार्कको (१३-२-१९०६) १९८
२०५. पत्र : कार्यवाहक मुख्य यातायात प्रबन्धकको (१४-२-१९०६) १९९
२०६. 'लीडर' को जवाब (१६-२-१९०६) २००
२०७. ट्रान्सवालके भारतीय और अनुमतिपत्र (१७-२-१९०६) २०१
२०८. जोहानिसबर्गकी ट्रामें और भारतीय (१७-२-१९०६) २०२
२०९. पत्र : छगनलाल गांधीको (१७-२-१९०६) २०३
२१०. पत्र : छगनलाल गांधीको (१८-२-१९०६) २०४
२११. पत्र : छगनलाल गांधीको (१९-२-१९०६) २०५
२१२. पत्र : छगनलाल गांधीको (२१-२-१९०६) २०६
२१३. दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीय (२२-२-१९०६) २०७
२१४. पत्र : छगनलाल गांधीको (२२-२-१९०६) २०८
२१५. सम्राट्का भाषण (२४-२-१९०६) २०९
२१६. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय (२४-२-१९०६) २१०
२१७. प्रतिबन्धकी लहर (२४-२-१९०६) २१२
२१८. अनुमतिपत्रका काठ (२४-२-१९०६) २१३
२१९. लन्दनकी मैट्रिक परीक्षामें तमिल (२४-२-१९०६) २१३
२२०. पत्र : दादाभाई नौरोजीको (२६-२-१९०६) २१४
२२१. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (२६-२-१९०६) २१५
२२२. अभिनन्दन-पत्र : अब्दुल कादिरको (२८-२-१९०६) २१६
२२३. भाषण : अब्दुल कादिरकी विदाईपर (२८-२-१९०६) २१७
२२४. राजवंशके सदस्योंका आगमन (३-३-१९०६) २१८
२२५. भारतीय और उत्तरदायी शासन (३-३-१९०६) २१८
२२६. केपके भारतीय व्यापारी (३-३-१९०६) २२०

२२७ मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेल-प्रणालीमें भारतीय यात्री (३-३-१९०६) २२०
२२८. मिडिलबर्गसे गुजरनेवाले भारतीयोंको सूचना (३-३-१९०६) २२१
२२९. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (३-३-१९०६) २२१
२३०. पत्र : छगनलाल गांधीको (४-३-१९०६) २२२
२३१ पत्र : छगनलाल गांधीको (५-३-१९०६) २२३
२३२. पत्र : छगनलाल गांधीको (५-३-१९०६) २२४
२३३ पत्र : ए० जे० बीनको (५-३-१९०६) २२५
२३४ पत्र : ए० जे० बीनको (७-३-१९०६) २२६
२३५ पत्र : छगनलाल गांधीको (९-३-१९०६) २२७
२३६. पत्र : छगनलाल गांधीको (९-३-१९०६) २२८
२३७. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (१०-३-१९०६ से पूर्व) २२९
२३८ "एशियाइयोंकी बाढ़" (१०-३-१९०६) २३१
२३९. एक अन्तर (१०-३-१९०६) २३३
२४० लज्जाजनक (१०-३-१९०६) २३४
२४१. व्यक्ति-कर सम्बन्धी शिकायत (१०-३-१९०६) २३५
२४२ जर्मन पूर्वी आफ्रिका जहाज प्रणालीके भारतीय यात्री (१०-३-१९०६) २३५
२४३. नेटाल भारतीय कांग्रेस (१०-३-१९०६) २३६
२४४. फ्राइहीडको नेटालसे अलग करनेके लिए आन्दोलन (१०-३-१९०६) २३७
२४५ श्री जॉन मॉर्ले और भारत (१०-३-१९०६) २३७
२४६. नेटालमें अधिवासी-पास आदिके नये नियम (१०-३-१९०६) २३८
२४७. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (१०-३-१९०६) २३९
२४८. "कानून-समर्थित डाका" (१७-३-१९०६) २४०
२४९. व्यक्ति-कर (१७-३-१९०६) २४२
२५०. भारतीय स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता (१७-३-१९०६) २४३
२५१. अन्तर्राज्य वतनी महाविद्यालय (१७-३-१९०६) २४४
२५२. सर विलियम गैटेकर (१७-३-१९०६) २४५
२५३ आस्ट्रेलियामें बस्तीकी कमी (१७-३-१९०६) २४५
२५४. ट्रान्सवालके भारतीयोंपर निर्योग्यताएँ (१७-३-१९०६) २४६
२५५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (१७-३-१९०६) २४८
२५६ पत्र : दादाभाई नौरोजीको (१९-३-१९०६) २४९
२५७ नेटालका शीघ्र दूकानबन्दी अधिनियम (२४-३-१९०६) २५०
२५८ रंगदार लोगोंका प्रार्थनापत्र (२४-३-१९०६) २५१
२५९. 'कलर्ड पीपुल्' का प्रार्थनापत्र (२४-३-१९०६) २५३
२६०. हीडेलबर्गकी जमातको दो शब्द (२४-३-१९०६) २५४
२६१. केपमें चेचक (२४-३-१९०६) २५४
२६२. सिडनीमें प्लेग (२४-३-१९०६) २५५
२६३. साबुनके लिए प्रमाणपत्र (२६-३-१९०६) २५५
२६४ प्रार्थनापत्र : लॉर्ड एलगिनको (३०-३-१९०६) २५६
२६५. शीघ्र दूकानबन्दी अधिनियम (३१-३-१९०६) २५८

२६६. न्यायका दुर्ग (३१–३–१९०६) २५९
२६७. भारतीय स्वयंसेवक (३१–३–१९०६) २६१
२६८. ट्रान्सवालका संविधान (३१–३–१९०६) २६२
२६९. ट्रान्सवालकी खानोंके लिए भारतीय मजदूर (३१–३–१९०६) २६३
२७०. केपके भारतीय (३१–३–१९०६) २६३
२७१. कुमारी बिसिक्सकी मृत्यु (३१–३–१९०६) २६५
२७२. ट्रान्सवालमें अनुमतिपत्र सम्बन्धी जुल्म (३१–३–१९०६) २६५
२७३. लड़ाईके दावे (३१–३–१९०६) २६६
२७४. भारतीय मामलोंके लिए ब्रिटिश संसद-सदस्योंकी नई समिति (३१–३–१९०६) २६६
२७५. सर जॉर्ज बर्डवुडकी बहादुरी और एक क्लबका हल्कापन (३१–३–१९०६) २६६
२७६. कैडबरी बन्धुओंकी उदारता (३१–३–१९०६) २६७
२७७. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (३१–३–१९०६) २६७
२७८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (३१–३–१९०६) २६९
२७९. पत्र : छगनलाल गांधीको (६–४–१९०६) २७०
२८०. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (७–४–१९०६ से पूर्व) २७१
२८१. पत्र : 'लीडर' को (७–४–१९०६ से पूर्व) २७२
२८२. पत्र : छगनलाल गांधीको (७–४–१९०६) २७३
२८३. शरण-स्थल (७–४–१९०६) २७४
२८४. गिरमिटिया कर (७–४–१९०६) २७६
२८५. नेटालमें राजनीतिक उपद्रव (७–४–१९०६) २७६
२८६. ट्रान्सवालमें जमीनका कानून (७–४–१९०६) २७८
२८७. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (७–४–१९०६) २७९
२८८. उद्धरण : दादाभाई नौरोजीके नाम पत्रसे (१०–४–१९०६) २८१
२८९. पत्र : छगनलाल गांधीको (१०–४–१९०६) २८१
२९०. पत्र : छगनलाल गांधीको (११–४–१९०६) २८२
२९१. पत्र : विलियम वेडरबर्नको (१२–४–१९०६) २८३
२९२. पत्र : छगनलाल गांधीको (१३–४–१९०६) २८६
२९३. एक मुश्किल मामला (१४–४–१९०६) २८७
२९४. ट्रान्सवाल अनुमतिपत्र अध्यादेश (१४–४–१९०६) २८८
२९५. एक परवाना सम्बन्धी प्रार्थनापत्र (१४–४–१९०६) २८९
२९६. परवाना सम्बन्धी विज्ञप्ति (१४–४–१९०६) २९०
२९७. नेटालका विद्रोह (१४–४–१९०६) २९१
२९८. फेरीवालोंपर खतरा (१४–४–१९०६) २९२
२९९. लेडीस्मिथ परवाना-निकाय (२१–४–१९०६) २९३
३००. ट्रान्सवालके अनुमतिपत्र (२१–४–१९०६) २९४
३०१. डर्बन नगर-परिषद और भारतीय (२१–४–१९०६) २९५
३०२. म० द० आ० रेल-प्रणालीमें यात्राकी कठिनाइयाँ (२१–४–१९०६) २९६
३०३. वीसूवियसका ज्वालामुखी (२१–४–१९०६) २९६
३०४. विलायत जानेवाला भारतीय शिष्टमण्डल (२१–४–१९०६) २९७

३०५. जहाजसे नेटालमें उतरनेवाले भारतीयोको सूचना (२१–४–१९०६) २९७
३०६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (२१–४–१९०६) २९८
३०७. 'इंडियन ओपिनियन'के बारेमें (२३–४–१९०६) २९९
३०८. मुस्लिम युवक-मण्डलसे (२४–४–१९०६) ३००
३०९. भाषण : कांग्रेसकी सभामें (२४–४–१९०६) ३०१
३१०. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (२५–४–१९०६) ३०२
३११ 'नेटाल मर्क्युरी'को भेंट (२६–४–१९०६ से पूर्व) ३०२
३१२. एक भारतीय प्रस्ताव (२८–४–१९०६) ३०३
३१३. नेटाल दूकान-कानून (२८–४–१९०६) ३०४
३१४. इस पत्रकी आर्थिक स्थिति (२८–४–१९०६) ३०५
३१५. दक्षिण आफ्रिकाके नौजवान भारतीयोंसे विनय (२८–४–१९०६) ३०५
३१६ मोम्बासाकी सभा (२८–४–१९०६) ३०६
३१७ नेटालका विद्रोह और नेटालको मदद (२८–४–१९०६) ३०७
३१८ चीनमें हलचल (२८–४–१९०६) ३०७
३१९. तम्बाकूसे हानियाँ (२८–४–१९०६) ३०८
३२०. सान्फ्रान्सिस्कोकी हालत (२८–४–१९०६) ३०८
३२१ जवाब : मुस्लिम युवक संघको (२८–४–१९०६) ३०९
३२२. पत्र : छगनलाल गांधीको (३०–४–१९०६) ३१०
३२३. नेटाल भूमि-विधेयक (५–५–१९०६) ३११
३२४. केपके विक्रेता-परवाने (५–५–१९०६) ३११
३२५. ब्रिटेन, तुर्की और मिस्र (५–५–१९०६) ३१२
३२६. हमारा कर्तव्य (५–५–१९०६) ३१२
३२७ मोम्बासाका उदाहरण (५–५–१९०६) ३१३
३२८. मजदूरोंका रहन-सहन (५–५–१९०६) ३१४
३२९. भारतीय व्यापार-संघ (५–५–१९०६) ३१४
३३० जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (५–५–१९०६) ३१५
३३१. पत्र : छगनलाल गांधीको (५–५–१९०६) ३१७
३३२. पत्र : छगनलाल गांधीको (६–५–१९०६) ३१८
३३३ पत्र : लॉर्ड मेल्बोर्नको (१२–५–१९०६ से पूर्व) ३१९
३३४. भारतीय स्वयंसेवा (१२–५–१९०६) ३२१
३३५. भारतीयोंके अनुमतिपत्र (१२–५–१९०६) ३२२
३३६. रंगदार लोगोंका प्रार्थनापत्र (१२–५–१९०६) ३२३
३३७ भारतको स्वराज्य (१२–५–१९०६) ३२४
३३८ चीनी वापस जा सकेंगे (१२–५–१९०६) ३२४
३३९ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (१४–५–१९०६) ३२५
३४०. पत्र : दादाभाई नौरोजीको (१६–५–१९०६) ३२६
३४१. एक एशियाई नीति (१९–५–१९०६) ३२७
३४२ दक्षिण आफ्रिकामें दूकानबन्दी आन्दोलन (१९–५–१९०६) ३२८
३४३. पाँचेफस्ट्रूम और क्लार्क्सडॉर्प (१९–५–१९०६) ३२९

३४४. हमारे अवगुण (१९–५–१९०६) ३२९
३४५. भारतकी स्थितिपर 'रैंड डेली मेल' के विचार (१९–५–१९०६) ३३१
३४६. बालकोंके अनुमतिपत्रके बारेमें सूचना (१९–५–१९०६) ३३१
३४७. चीनियोंको वापस भेजनेका सवाल (१९–५–१९०६) ३३२
३४८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (१८–५–१९०६ के बाद) ३३२
३४९. पत्र : 'ट्रान्सवाल लीडर' को (२१–५–१९०६) ३३५
३५०. साम्राज्य-दिवस (२६–५–१९०६) ३३६
३५१. नेटाल गवर्नमेंट रेलवे : एक शिकायत (२६–५–१९०६) ३३७
३५२. नेटालका भूमि-विधेयक (२६–५–१९०६) ३३७
३५३. चीनी-जागृतिकी एक निशानी (२६–५–१९०६) ३३८
३५४. पीला भय (२६–५–१९०६) ३३८
३५५. अमेरिकाके धनाढ्य (२६–५–१९०६) ३३८
३५६. चीनकी स्थितिमें परिवर्तन (२६–५–१९०६) ३३९
३५७. भारतमें युवराजकी यात्रा (२६–५–१९०६) ३४०
३५८. बसूटोलैंडमें भारतीयोंका बहिष्कार (२६–५–१९०६) ३४०
३५९. चीनी मजदूर (२६–५–१९०६) ३४१
३६०. दूकान-बन्दीका कानून (२६–५–१९०६) ३४१
३६१. नेटालका चेचक-अधिनियम (२६–५–१९०६) ३४१
३६२. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (२६–५–१९०६) ३४२
३६३. पत्र : लक्ष्मीदास गांधीको (२७–५–१९०६) ३४४
३६४. वक्तव्य : संविधान समितिको (२९–५–१९०६) ३४५
३६५. भारतीय मुसाफिर (२–६–१९०६) ३५५
३६६. एक अनुमतिपत्र सम्बन्धी मामला (२–६–१९०६) ३५५
३६७. स्वर्गीय डॉक्टर सत्यनाथन (२–६–१९०६) ३५६
३६८. केपमें प्रवासी अधिनियम (२–६–१९०६) ३५६
३६९. सर हेनरी कॉटन और भारतीय (२–६–१९०६) ३५७
३७०. नेटालका विद्रोह (२–६–१९०६) ३५७
३७१. नया सानफ्रान्सिस्को (२–६–१९०६) ३५७
३७२. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (२–६–१९०६) ३५८
३७३. पत्र : प्रधान चिकित्साधिकारीको (२–६–१९०६) ३५९
३७४. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (६–६–१९०६) ३६०
३७५ पत्र : दादाभाई नौरोजीको (८–६–१९०६) ३६१
३७६. भारतीय और वतनी विद्रोह (९–६–१९०६) ३६२
३७७. फौजियोंको मदद (९–६–१९०६) ३६३
३७८. नेटालमें भारतीयोंकी स्थिति (१३–६–१९०६ से पूर्व) ३६३
३७९. वफादारीका प्रतिज्ञापत्र (१६–६–१९०६) ३६६
३८०. लॉर्ड सेल्बोर्न (१६–६–१९०६) ३६७
३८१. श्री सीडन (१६–६–१९०६) ३६७
३८२. पत्र : टुकड़ी नायकको (१८–६–१९०६) ३६८

३८३. पत्र : गो० कृ० गोखलेको (२२–६–१९०६) ३७०
३८४. अनुमतिपत्रका एक महत्त्वपूर्ण मुकदमा (२३–६–१९०६) ३७०
३८५ भारतीय स्वयसेवक (२३–६–१९०६) ३७२
३८६. सुलेमान मगाका मुकदमा (२३–६–१९०६) ३७३
३८७. लेडीस्मिथके गिरमिटिया भारतीय (२३–६–१९०६) ३७३
३८८ भारतीय डोलीवाहक दल (२३–६–१९०६) ३७३
३८९. किरायेके बारेमे महत्त्वपूर्ण मुकदमा (२३–६–१९०६) ३७४
३९०. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (२३–६–१९०६) ३७४
३९१. भारतीय लड़ाईमे जाये या नही ? (३०–६–१९०६) ३७६
३९२. उद्धरण : दादाभाई नौरोजीके नाम पत्रसे (३०–६–१९०६) ३७७
३९३ भारतीय डोलीवाहक दल (१९–७–१९०६ से पूर्व) ३७८
३९४. भारतीय डोलीवाहक दल (१९–७–१९०६ से पूर्व) ३८०
३९५. भाषण · आहत-सहायक दलके सत्कारके अवसरपर (२०–७–१९०६) ३८३
३९६. वक्तव्य : हीरक जयन्ती पुस्तकालयके सम्बन्धमे (२३–७–१९०६) ३८४
३९७ ट्रान्सवालके अनुमतिपत्र (२८–७–१९०६) ३८४
३९८ पत्र : विलियम वेडरबर्नको (३०–७–१९०६) ३८५
३९९ पत्र . दादाभाई नौरोजीको (३०–७–१९०६) ३८५
४००. पत्र प्रधान चिकित्साधिकारीको (३१–७–१९०६) ३८६
४०१. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (४–८–१९०६ से पूर्व) ३८८
४०२ गुप्त न्याय (४–८–१९०६) ३८९
४०३ श्री बाइटका वसीयतनामा (४–८–१९०६) ३९०
४०४. मिस्र और नेटालकी तुलना (४–८–१९०६) ३९१
४०५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (४–८–१९०६) ३९१
४०६ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (४–८–१९०६ के बाद) ३९३
४०७ पत्र दादाभाई नौरोजीको (६–८–१९०६) ३९५
४०८ पत्र · 'रैड डेली मेल'को (९–८–१९०६ से पूर्व) ३९७
४०९ "उचित और न्याय्य व्यवहार" (११–८–१९०६) ३९९
४१० भाषण हमीदिया इस्लामिया अजुमनमे (१२–८–१९०६) ४०२
४११. पत्र : दादाभाई नौरोजीको (१३–८–१९०६) ४०३
४१२. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड एलगिनको (१३–८–१९०६) ४०४
४१३ पत्र : हाजी इस्माइल हाजी अबूबकर झवेरीको (१४–८–१९०६) ४०५
४१४ भारत भारतीयोके लिए (१८–८–१९०६) ४०६
४१५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (१८–८–१९०६) ४०७
४१६ स्वर्गीय उमेशचन्द्र बनर्जी (२५–८–१९०६) ४०८
४१७ फर्ककी हिमायत (२५–८–१९०६) ४०९
४१८. हिन्दुओके श्मशानकी स्थिति (२५–८–१९०६) ४१०
४१९ ईरानका मामला (२५–८–१९०६) ४१०
४२० पत्र उपनिवेश-सचिवको (२५–८–१९०६) ४११
४२१ पितामह चिरजीवी हों ! (२७–८–१९०६ से पूर्व) ४१३

४२२. घृणित! (२७–८–१९०६ से पूर्व) ४१४
४२३. उपनिवेशी भारतीय अंकित कर लें! (२७–८–१९०६ से पूर्व) ४१५
४२४. केप परवाना अधिनियम (२७–८–१९०६ से पूर्व) ४१६
४२५. पत्र : छगनलाल गांधीको (२७–८–१९०६) ४१७
४२६. तार : 'इंडिया' को (२८–८–१९०६) ४१८
४२७. ज़ापानके वीर कोडामा (१–९–१९०६) ४१८
४२८. पत्र : छगनलाल गांधीको (१–९–१९०६) ४१९
४२९. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (३–९–१९०६) ४२०
४३०. बधाई : दादाभाई नौरोजीको (४–९–१९०६) ४२१
४३१. अपराध (८–९–१९०६) ४२२
४३२. पितामह (८–९–१९०६) ४२३
४३३. रूस और भारत (८–९–१९०६) ४२४
४३४. ट्रान्सवालमें नकली अनुमतिपत्र (८–९–१९०६) ४२५
४३५. हिन्दू-श्मशान (८–९–१९०६) ४२६
४३६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको (८–९–१९०६) ४२६
४३७. तार : उपनिवेश-मंत्रीको (८–९–१९०६) ४२७
४३८. तार : भारतके वाइसरायको (८–९–१९०६) ४२७
४३९. भाषण : खूनी कानूनपर (९–९–१९०६ से पूर्व) ४२८
४४०. भाषण : हमीदिया इस्लामिया अंजुमनमें (९–९–१९०६) ४२९
४४१. सार्वजनिक सभा (११–९–१९०६) ४३०
४४२. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (११–९–१९०६) ४३५
४४३. पत्र : विधान-परिषदके अध्यक्षको (११–९–१९०६) ४३८
४४४. पत्र : ट्रान्सवालके लेफ्टिनेंट गवर्नरको (१२–९–१९०६) ४३९
४४५. जवाब : 'रैंड डेली मेल' को (१२–९–१९०६) ४३९
४४६. पत्र : 'स्टार' को (१४–९–१९०६ से पूर्व) ४४०
४४७. ट्रान्सवालका नया विधेयक (१५–९–१९०६) ४४२
४४८. वक्तव्य : एशियाई अध्यादेशपर (१७–९–१९०६ से पूर्व) ४४२
४४९. पत्र : अखबारोंको (१९–९–१९०६) ४४४
४५०. पत्र : डॉ० एडवर्ड नंडीको (२०–९–१९०६) ४४५
४५१. पत्र : 'लीडर' को (२१–९–१९०६) ४४६
४५२. स्वर्गीय न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी (२२–९–१९०६) ४४७
४५३. ट्रान्सवालके भारतीयों द्वारा विरोध (२२–९–१९०६) ४४८
४५४. ट्रान्सवाल अनुमतिपत्र अध्यादेश (२२–९–१९०६) ४४९
४५५. ट्रान्सवालमें भारतीय स्त्रियोंकी मुसीबतें (२२–९–१९०६) ४५०
४५६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (२२–९–१९०६) ४५१
४५७. पत्र : 'लीडर' को (२२–९–१९०६) ४५६
४५८. पत्र : प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीको (२२–९–१९०६) ४५७
४५९. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (२५–९–१९०६) ४५८
४६०. पत्र : डी० सी० मैल्कमको (२६–९–१९०६) ४६०

४६१. पत्र : डॉ० एडवर्ड नंडीको (२६–९–१९०६) ४६०
४६२. पत्र : 'लीडर' को (२७–९–१९०६) ४६१
४६३. पत्र : डॉ० एडवर्ड नंडीको (२७–९–१९०६) ४६१
४६४. कसौटीपर (२९–९–१९०६) ४६२
४६५. पूनिया काण्ड (२९–९–१९०६) ४६३
४६६. ट्रान्सवाल अनुमतिपत्र अध्यादेश (२९–९–१९०६) ४६५
४६७ डेलागोआ-बे के भारतीय (२९–९–१९०६) ४६६
४६८ चेतावनी (२९–९–१९०६) ४६६
४६९. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी (२९–९–१९०६) ४६७
४७०. ट्रान्सवालका कानून (२९–९–१९०६) ४६८
४७१. तार : ट्रान्सवाल गवर्नरको (३०–९–१९०६) ४७१
४७२. भाषण : विदाई सभामें (३०–९–१९०६) ४७२
४७३. हाजी वजीर अली (६–१०–१९०६) ४७२
४७४. हाँगकाँगमें ईश्वरीय प्रकोप (६–१०–१९०६) ४७३
४७५ ट्रान्सवालके भारतीयोंका कर्तव्य (६–१०–१९०६) ४७४
४७६. तार : उपनिवेश-मन्त्रीको (८–१०–१९०६) ४७६
४७७. प्रार्थनापत्र लॉर्ड एलगिन को (८–१०–१९०६) ४७६
४७८. शिष्टमण्डलकी यात्रा – १ (११–१०–१९०६ से पूर्व) ४७८
४७९. शिष्टमण्डलकी यात्रा – २ (११–१०–१९०६) ४८०
४८० नये नगरपालिका-कानूनके सम्बन्धमें दो शब्द (१३–१०–१९०६) ४८३
४८१. दावानल (१३–१०–१९०६) ४८३
४८२. पत्र : रामदास गांधीको (२०–१०–१९०६ से पूर्व) ४८४
४८३. शिष्टमण्डल की यात्रा – ३ (२०–१०–१९०६ से पूर्व) ४८५
४८४. कुछ प्रश्न (२०–१०–१९०६) ४८६
४८५. आशाकी किरण (२०–१०–१९०६) ४८८
४८६. टाइलर, हैम्डन और बनियन (२०–१०–१९०६) ४८८
सामग्रीके साधनसूत्र ४९०
तारीखवार जीवन-वृत्तान्त ४९१
सांकेतिका ५००

चित्र-सूची

गांधीजी	मुखचित्र
पत्र : छगनलाल गांधीको	३२
पत्र : कुमारी बिसिक्सको	३३
घरका नक्शा	२२५
भारतीय डोलीवाहक दल	३७६
सार्जेंट मेजर गांधी	३७७
जहाज 'आर्मडेल कासिल' से	४८०

१. नेटालके विधेयक

नेटाल सरकारके २१ जूनके खास 'गज़ट' मे चार विधेयक प्रकाशित किये गये हैं। वे सभी थोड़े या वहुत आपत्तिजनक हैं। पहला विधेयक उन कानूनोमें संशोधन करनेके लिए रखा गया है जो कि जूलूलैंड प्रान्तमें शरावके परवाने और दूसरे परवानोसे सम्बन्धित हैं। यह विधेयक अधिकतर ब्रिटिश भारतीयोंको लक्ष्यमें रखकर वनाया गया है। इसके अनुसार प्रत्येक फेरीवालेको प्रतिमास परवाना लेना पड़ेगा; और यह उन फेरीवालोंपर भी लागू होगा जो आयातित माल नहीं वेचते, यद्यपि ऐसा माल वेचनेके परवानेका कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। जो फेरीवाला आयातित माल वेचनेका परवाना लेगा उसे प्रतिमास १ पौंड शुल्क देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त १८९७ के कानून १८ के अनुसार परवाने तवतक नही दिये जायेंगे जवतक कि उपनिवेश-सचिव उनकी मंजूरी न दे दे। इस सम्बन्धमे उनका निर्णय सर्वथा अन्तिम होगा, और "उनके निर्णयके खिलाफ किसी भी अदालतमें या उच्चाधिकारीके सामने अपील नही की जा सकेगी।"

दूसरा विधेयक भी ब्रिटिश भारतीयोसे ही सम्वन्धित है। इसके द्वारा अनधिकृत देहाती ज़मीनोपर कर लगाया जायेगा। यह उसी विधेयककी नकल है जिसपर हम पहले विचार कर चुके हैं[1]। इसके अनुसार वह ज़मीन जिसपर स्वयं उसका मालिक या कोई यूरोपीय, प्रत्येक वर्षमे जनवरीसे दिसम्वर तक के वारह महीनोंमें से कमसे-कम दो महीने लगातार नही रहा है, अनधिकृत मानी जायेगी।

तीसरे विधेयकका उद्देश्य निजी वस्तियोमें भी परवानोकी व्यवस्था करना है। इसमे 'निजी वस्ती' की व्याख्या की गई है: "किसी निजी जमीनपर अथवा विकती हुई सरकारी जमीनपर वनी कितनी भी झोपड़ियाँ या मकान जिनमे वतनी या एशियाई रहते हों।" इस प्रकार जमीनका प्रत्येक टुकड़ा, जिसपर भारतीयोंका अधिकार होगा, कलमकी एक रगड़से 'निजी वस्ती' मे वदल दिया जायेगा, और उस स्थानके मालिकको एक परवाना लेना पड़ेगा और उसके लिए १० शिलिंग प्रति झोंपड़ी या मकान प्रतिवर्ष देने होंगे। जिन झोंपड़ियोंमे एशियाई या वतनी कर्मचारी रहते होंगे उनका कोई परवाना-शुल्क नही लिया जायेगा। इसका शुद्ध परिणाम यह होगा कि ऐसे प्रत्येक कमरेपर, जो खुद मालिक या मालिकके नौकरके अलावा, किसी अन्य भारतीयके अधिकारमें होगा, १० शिलिंग सालाना कर लग जायेगा — फिर उस अपमानका तो कुछ कहना ही नही जो कि एशियाइयोंके निवास-स्थानोंको 'वस्ती' के नामसे पुकारनेमें निहित है।

चौथा विधेयक आवाद रिहायशी मकानोंपर कर लगानेके सम्वन्धमें है। यह सवपर लागू होगा। शायद विधेयकके निर्माताओंका ध्यान विधेयकका मसविदा वनाते समय ब्रिटिश भारतीयो-पर विलकुल नही था; फिर भी, अन्तमें इसका प्रभाव अन्य किसी जातिकी अपेक्षा उनपर कही अधिक पड़ेगा। इसमें, ७५० पौंडसे कम मूल्यके प्रत्येक मकानपर १ पौंड १० शिलिंग कर लगानेका प्रस्ताव है। यह कर ४,००० पौंडसे अधिक कीमतके रिहायशी मकानोंपर वढ़कर २० पौंड हो जाता है। और 'रिहायशी मकान' का अर्थ है ऐसा कोई भी मकान या मकानका भाग जो रहनेके काम आता हो — इसमे घरेलू नौकर-चाकरोंके कमरे, अस्तवल, कोठियोंके वाहर अहातोंमे वने कमरे, और अन्य वे सव तामीरात शामिल हैं जो रिहायशी

१. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ४७०।

मकानके साथ लगी हों, बशर्ते कि वे रिहायशके काम आती हों। यह कर मकानोंके मालिकोंसे नहीं, उनमें जो रहते है उनसे वसूल किया जायेगा। इसलिए उसमें रहनेवाले व्यक्तिको भी १ पौंड १० शिलिंग वार्षिक कर देना पड़ेगा; चाहे किसी कमरेकी कीमत केवल ५० पौंड ही क्यों न हो। बहुत-से कमरे केवल लकड़ी और लोहेके बने है, और उनका किराया शायद केवल पाँच शिलिंग मासिक दिया जाता है। इस किरायेमे भी सरकार आधा क्राउन [ढाई शिलिंग] मासिककी वृद्धि करना चाहती है। और कुछ नहीं तो, उसे छूटकी एक सीमा बाँध देनी थी और उससे नीचे कोई कर नहीं लगाना था। वर्तमान रूपमें विधेयकपर सब प्रकारकी गम्भीर आपत्तियाँ की जा सकती है। ये चारों विधेयक नये मन्त्रिमण्डलकी[1] कार्रवाइयोंका एक नमूना है। हम यह कहनेके लिए विवश है कि इनमेंसे प्रत्येकपर अनुभवहीनताकी छाप दिखाई दे रही है। सरकार इस उपनिवेशको आर्थिक कठिनाइयोंसे उबारनेके जो प्रयत्न कर रही है उनमे प्रत्येक सच्चे नागरिकको उसके साथ सहानुभूति है, परन्तु उसने आय बढ़ानेके जो साधन अपनाये है उनका उदाहरण युद्धकालको छोड़कर आजके जमानेमे प्राय: कहीं नही मिलता। ये चोखे आर्थिक सिद्धान्तोके भी विरुद्ध है। हमें आशा है कि इस उपनिवेशकी नेकनामी और यशकी रक्षाकी खातिर विधानसभा और विधान-परिषद इन विधेयकोंको एकदम अस्वीकार कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–७–१९०५

२. श्री ब्रॉड्रिक[2] और ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

सर मंचरजीके[3] प्रश्नपर श्री ब्रॉड्रिकने ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें एक बड़ा महत्त्वपूर्ण उत्तर दिया है। बेथनल-ग्रीनके सदस्यने जोर दिया कि भारतीय समस्याका कुछ-न-कुछ हल निकाला जाना चाहिए और श्री ब्रॉड्रिकने जोर देकर कहा कि युद्धसे पहले भारतीय जिन अधिकारोंका उपभोग करते थे उनमें कमी नही की जायेगी; और, ट्रान्सवालको जितना भी हो सकता है उतना दबाया जा रहा है; परन्तु कोई स्वशासित उपनिवेश जिन लोगोंका अपने यहाँ प्रवेश करना अवांछनीय मानता है उनके सम्बन्धमें उसकी कार्रवाइयोंमें दखल देना मुश्किल है। श्री ब्रॉड्रिककी पहली बातका एकमात्र अर्थ यह हो सकता है कि साम्राज्य सरकारका इरादा यह ध्यान रखनेका है कि भारतीयोंके उन अधिकारोंमें कमी नही होने दी जाये जो उन्हे 'बोअर शासन' के समय प्राप्त थे। परन्तु उस इरादेपर इस समय अमल नही किया जा रहा है। केवल एक उदाहरण ले लें। पहले ब्रिटिश भारतीयोंके प्रवेशपर कोई पाबन्दी नही थी। पर अब — जैसा कि इन स्तम्भोमे बार-बार दिखाया जा चुका है — किसी नये भारतीयको तो ट्रान्सवालमें प्रविष्ट होने ही नही दिया जाता, पुराने निवासियोंको भी केवल थोड़ी संख्यामें आने दिया जाता है, और वह भी थकाऊ, असुविधाजनक और खर्चीले जाब्तोमे से गुजरनेके

१. जिसके प्रधान सी० जे० स्मिथ थे।

२. जॉन ब्रॉड्रिक, भारतमन्त्री (१९०३–५)।

३. सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरी (१८५१–१९३३): भारतीय बैरिस्टर, जो इंग्लैंडके निवासी बन गये थे; ब्रिटिश संसद और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लन्दन-स्थित ब्रिटिश समितिके सदस्य। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२०।

बाद। साम्राज्य-सरकार ट्रान्सवालको दबा रही है, यह हम जानते हैं और उसकी सराहना भी करते हैं। परन्तु हमें इसमें सन्देह है कि यह दबाव, परिस्थितिकी गम्भीरताके अनुसार, पर्याप्त है। माननीय मन्त्रीकी तीसरी बातसे अनेक सन्देह उत्पन्न होते हैं। उससे उनकी असहाय अवस्थाका पता चलता है। ट्रान्सवाल अभीतक स्वशासित उपनिवेश नहीं बना[1]; परन्तु छिपे हुए अर्थसे, श्री ब्रॉड्रिकने उक्त बात वैसा ही मानकर कही है। श्री ब्रॉड्रिकने उन वादोंसे इनकार नहीं किया जिनकी चर्चा सर मंचरजीने की थी। और न इस बातसे इनकार किया जा सकता है कि जब ये वादे किये गये थे तब जिम्मेदार मन्त्री भलीभाँति जानते थे कि आगे क्या होनेवाला है। वे जानते थे कि युद्धका एकमात्र परिणाम क्या होगा और शान्तिकी घोषणाके पश्चात् ट्रान्सवालको स्वशासन देना पड़ेगा। इसलिए इसका मतलब यह निकला कि ट्रान्सवालके यूरोपीयोंको खुश करनेकी उत्सुकतामें, अब ब्रिटिश सरकार अपने वादोंसे मुकर जानेके लिए भी तैयार हो गई है। यहाँ यह प्रश्न करना सर्वथा संगत होगा कि युद्ध समाप्त होते ही, भारतीयोंके साथ किये गये वादे तुरन्त पूरे क्यों नहीं किये गये। और अब भी, सर विलियम वेडरबर्नके[2] सुझावके अनुसार, ट्रान्सवालको वास्तविक स्वशासन मिलनेसे पहले ही, ब्रिटिश सरकार ब्रिटिश भारतीयोंपर से पुरानी पाबन्दियाँ क्यों नहीं हटा देती? वह ऐसा करके इस कानूनको उलट देनेकी बदनामी और वैसा करनेकी आवश्यकता सिद्ध करनेका बोझ, उस परिषदके सिरपर क्यों नहीं डाल देती जो पूर्ण स्वशासन मिल जानेपर चुनी जायेगी?

जिस समय श्री ब्रॉड्रिकने उपर्युक्त बातें कही थीं उसी समय उन्होंने, एक अन्य स्थानपर, परन्तु भारत-मन्त्रीकी हैसियतसे ही, अपने श्रोताओंको बताया था कि उनपर, ब्रिटेनके बाद, पहला दावा भारतका ही है, क्योंकि भारतके साथ ब्रिटेनका व्यापार उसकी अपेक्षा ज्यादा है जितना कैनेडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण आफ्रिकाके साथ मिलकर होता है। यदि युद्धकी समाप्तिपर ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके हितोंपर इसी भावनासे विचार किया जाता तो लॉर्ड मिलनर[3] ट्रान्सवालके भारतीय-विरोधी कानूनोंपर भी ठीक उसी प्रकार बिना झिझके कलम फेर देते जिस प्रकार उन्होंने ब्रिटिश सिद्धान्तोंसे असंगत अन्य बीसियों अध्यादेशोंपर फेरी है। यह मामला ऐसा नहीं कि इधर उनका ध्यान ही न गया हो, क्योंकि देशमें आवागमन आरम्भ होते ही भारतीयोंने लॉर्ड मिलनरसे भारतीय-विरोधी कानून रद कर देनेकी प्रार्थना की थी। यदि वे यह कदम उठाते तो आज जो भारत-विरोधी आन्दोलन चल रहा है वह शायद सुनाई भी न देता। और हमारी सम्मतिमें श्री ब्रॉड्रिककी कल्पनापर अमल भी किया जा सकता है। अभी कोई बहुत देर नहीं हुई है।

[अंग्रेजीसे].

इंडियन ओपिनियन, १–७–१९०५

१. स्वशासन १९०६ में मिला।

२. भारतीय नागरिक सेवाके विशिष्ट सदस्य; इनका पीछे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे सम्बन्ध रहा। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६।

३. सर अल्फ्रेड मिलनर, दक्षिण आफ्रिकाके उच्चायुक्त, १८९७–१९०५; केप उपनिवेशके गवर्नर, १८९७–१९०१ तथा ट्रान्सवालके १९०१–५।

३. लॉर्ड सेल्बोर्न[1] और स्वशासन

श्री ब्रॉड्रिकके वक्तव्यके[2] बारेमें हम जो कुछ कह चुके हैं, उसे देखते हुए ऑरेंज रिवर कालोनीमें लॉर्ड सेल्बोर्न द्वारा एक शिष्टमण्डलको, जो पिछले हफ्ते उनसे मिला था, दिये गये जवाबकी मीमांसा करना दिलचस्पीकी बात होगी। शिष्टमण्डल उनसे उक्त उपनिवेशको स्वशासन देनेकी प्रार्थना करनेके लिए गया था। परमश्रेष्ठने परिभाषा करते हुए कहा:

> **ब्रिटिश साम्राज्यमें उत्तरदायी शासनका अर्थ शुद्ध स्थानीय मामलोंमें पूर्ण स्वतन्त्रता होता है। जबतक यह स्वतन्त्रता ब्रिटिश साम्राज्यके आम मेलजोलमें दखल नहीं देती अथवा उन सिद्धान्तोंको जिनपर उसकी नींव है, अथवा साम्राज्यकी किन्हीं अन्य भावनाओंको जो उसे एक-साथ बाँधती हैं, भंग नहीं करती, तबतक उसका अर्थ पूर्ण स्थानीय स्वराज्य है।**

यह परिभाषा सम्राटके एक विशिष्ट प्रतिनिधिके योग्य है और यह साम्राज्यके उपनिवेश-मन्त्रियोंके द्वारा बार-बार की गई घोषणाओंसे मेल खाती है। तब प्रश्न उठता है कि क्या ब्रिटिश भारतीयों-पर ट्रान्सवालमें जो निर्योग्यताएँ लादी गई हैं, वे साम्राज्यके आम मेलजोलमें दखल नहीं देतीं, अथवा उन साम्राज्यीय भावनाओंको जो उसे एकताके सूत्रमें बाँधती हैं, भंग नहीं करतीं? प्रश्नका उत्तर स्पष्ट है। हम आशा करते हैं कि जब परमश्रेष्ठके सामने भारतीय प्रश्नोंपर विचार करनेका अवसर आये, तब वे अपने द्वारा दी गई इस परिभाषाको लागू करेंगे और आजकी विसंगतिको दूर करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–७–१९०५

४. सरकारी नौकरियोंमें भेद-भाव

लॉर्ड कर्जनने[3] बहुत बार कहा है कि वे नौकरियाँ देनेमें गोरों और कालोंके बीच कोई भेद नहीं करते। उन्होंने एक बार बड़े आवेशसे कहा था कि नौकरियाँ पानेके सम्बन्धमें ऐसी कोई बात नहीं जिसके बारेमें भारतीय शिकायत कर सकें। और यह साबित करनेके लिए कि भारतीयोंको बहुत-सी नौकरियाँ दी जा रही हैं, उन्होंने एक ब्योरा भी प्रकाशित कराया था। किन्तु वह ब्योरा बनावटी था, क्योंकि उसमें ७५ रुपये वेतन पानेवाले अनेक भारतीय शामिल कर लिये गये थे। माननीय गोपालकृष्ण गोखलेने[4] भी उनके इस झूठे दावेका भंडाफोड[5] कर दिया है।

१. दक्षिण आफ्रिकामें उच्चायुक्त तथा ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशके गवर्नर, १९०५–१०।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल, १८९९–१९०५।

४. गोपालकृष्ण गोखले (१८६६–१९१५) भारतके एक प्रतिष्ठित नेता और राजनीतिज्ञ। १९०५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके बनारस अधिवेशनके अध्यक्ष। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१७।

५. शाही विधान परिषदमें दिये अपने एक बजट सम्बन्धी भाषणमें।

उन्होंने यह बता दिया है कि बड़े-बड़े वेतन पानेवाले लोग प्रायः सभी यूरोपीय हैं; और जो नई जगहें निकली हैं, वे भी सब यूरोपीयोंको ही मिली हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–७–१९०५

५. मैक्सिम गोर्की[1]

रूसके लोगों और हमारे देशके लोगोंके बीच एक हदतक तुलना की जा सकती है। जैसे हम गरीब हैं वैसे ही रूसकी जनता भी गरीब है। जैसे हमें राजकाज चलानेका कुछ भी अधिकार नहीं है और चुपचाप कर चुकाने पड़ते हैं, उसी प्रकार रूसके लोगोंको भी करना पड़ता है। रूसमें ऐसे कष्टोंको देखकर कुछ अत्यन्त वीर पुरुष सामने आ जाते हैं। कुछ समय पहले रूसमें विद्रोह हुआ। उसमें जिन्होंने मुख्य भाग लिया उनमें मैक्सिम गोर्की भी थे। वे बहुत गरीबीमें पले थे। शुरूमें वे एक मोचीके यहाँ नौकरीपर रहे। वहाँसे उनको छुट्टी दे दी गई। फिर उन्होंने कुछ समय तक सिपाहीगीरी की। उस समय उन्हें अध्ययन करनेकी तीव्र अभिलाषा हुई। लेकिन गरीब होनेके कारण किसी अच्छी पाठशालामें प्रवेश नहीं मिल सका। उसके बाद उन्होंने एक वकीलके यहाँ नौकरी की और अन्तमें एक नानबाईके यहाँ फेरीदारका काम किया। इस बीच सारे समय उन्होंने निजी परिश्रमसे शिक्षा प्राप्त करनेका कार्य जारी रखा। उन्होंने १८९२ में अपनी पहली पुस्तक लिखी जो इतनी रोचक थी कि उससे उनकी ख्याति तुरन्त फैल गई। उसके बाद उन्होंने बहुत-सी रचनाएँ की हैं। इन सबके पीछे उनका एक ही उद्देश्य था कि लोगोंको उनके ऊपर होनेवाले अत्याचारोंके खिलाफ उकसाया जाये, सत्ताधीशोंके कान खड़े किये जायें और यथासम्भव जनताकी सेवा की जाये। वे पैसा कमानेकी कुछ भी परवाह न करके ऐसे तीखे लेख लिखते हैं कि उनपर अधिकारियोंकी कड़ी निगाह रहती है। वे लोकसेवा करते हुए जेल भी हो आये हैं, किन्तु इसे अपना सम्मान समझते हैं। [ऐसा कहा जाता है कि यूरोपमें लोगोंके हकोंकी रक्षा करनेवाला मैक्सिम गोर्कीके समान कोई दूसरा लेखक नहीं है।]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–७–१९०५

१. अलेक्सी मैक्सीमोविच पीशकोव गोर्की (१८६८–१९३६): रूसी उपन्यासकार और लेखक।

६. सिंगापुरमें चीनी और भारतीय

सिंगापुर जितना हमारे नजदीक है उतना ही चीनियोंके नजदीक भी कहा जा सकता है। उस मुल्कमें चीनियोंको जितनी सुविधाएँ हैं उतनी ही भारतीयोंको भी हैं। फिर भी हम लोग सिंगापुरमें चीनियोंका मुकाबला नहीं कर पाते। बहुत-से चीनी सरकारी नौकरीमें हैं, सरकारी निर्माण विभागमें हैं, ठेकेदार हैं, और बहुत सम्पन्न हैं। कुछ तो मोटरें भी रखते हैं। सन् १९०० में २,००,९४७, सन् १९०१ में १,७८,७७८, सन् १९०२ में २,०७,१५६ और सन् १९०३ में २,२०,३२१ चीनी सिंगापुरके इलाकेमें गये; जब कि भारतीय हर साल सिर्फ २१,००० के हिसाबसे ही गये। इन भारतीयोंमें अधिकतर मद्रासी थे। इस उदाहरणसे ज्ञात होता है कि हम लोगोंको बाहरके देशोंमें जाकर अभी कितना काम करना बाकी है। हमारे लिए यह बहुत शर्मकी बात है कि हम लोग चीनियोंकी बराबरी नहीं कर सकते।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–७–१९०५

७. पत्र: उच्चायुक्तके सचिवको

जोहानिसबर्ग
जुलाई १, १९०५

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त
जोहानिसबर्ग

महोदय,

रंगदार व्यक्तियोंके बारेमें ऑरेंज रिवर कालोनीके परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा समय-समयपर स्वीकृत उपधाराओंके सम्बन्धमें उक्त कालोनीकी सरकार और मेरे संघके बीचमें जो पत्रव्यवहार[1] हुआ है, उसकी प्रतियाँ मैं इस पत्रके साथ संलग्न कर रहा हूँ। मेरा संघ परम-श्रेष्ठका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करनेकी धृष्टता करता है कि मेरे पत्रमें किसी नये विधानकी माँग नहीं की गई है। मेरे संघकी नम्र रायमें लेफ्टिनेंट गवर्नरको जो अधिकार प्राप्त हैं उनके बलपर वे ऐसी उपधाराओंका निषेध कर सकते हैं जो ब्रिटिश परम्पराओं और अधिकार-पत्र (लैटर्स पेटेंट)के विरोधमें हों। मेरे संघको सूचित किया गया है कि नगरपालिकाओंको जो कानून बनानेकी आज्ञा मिली है उसे यदि विधान-परिषद स्वीकार कर ले तो फिर महामहिम सम्राटकी स्वीकृति उसपर प्राप्त करनी होगी। मेरे संघका यह खयाल भी है कि स्थानापन्न उपनिवेश-सचिव द्वारा लिखित पत्रका अन्तिम अनुच्छेद मेरे संघ द्वारा की गई शिकायतका औचित्य

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", खण्ड ४, पृष्ठ ४३३-४। सरकारने इसके उत्तरमें सूचित किया कि उपनिवेशमें नगरपालिकाओंके अधिकार सीमित करनेके उद्देश्यसे कानून बनानेका कोई विचार नहीं है।

पूरी तरहसे सिद्ध करता है; क्योंकि यदि ब्रिटिश भारतीयोंकी अत्यल्प संख्याके कारण उठाया गया प्रश्न कोई व्यावहारिक महत्ता नही रखता, तो मेरे पत्रमें उल्लिखित ढंगका विधान स्वीकृत करनेका भी कोई व्यावहारिक अर्थ नही हो सकता। वह उपनिवेशके लिए किसी प्रकार उपयोगी न होकर भी निरर्थक रूपसे दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय समाजकी भावनाओंको चोट पहुँचाता है और इसलिए मेरा संघ ऐसी आशा करता है कि परमश्रेष्ठ उन उपधाराओंकी, जो ऑरेंज रिवर कालोनीकी विभिन्न नगरपालिकाओंमें पास की गई है तथा स्वीकृत की गई है, उदारतापूर्वक जाँच कराने और, राहत देनेकी कृपा करेंगे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ८–७–१९०५

८. पत्र : कैखुसरू व अब्दुल हकको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ३, १९०५

भाई श्री ५ कैखुसरू व अब्दुल हक,

आपका पत्र मिला। मुझे आपके उत्तरसे[1] सन्तोष है। आप लिखनेवालेका नाम जाननेकी इच्छा करते है, यह ठीक नही है। मैंने आपको लिखा है कि आपको उसे जाननेकी कोई जरूरत नही हैं। आपके लिए सचेत रहनेकी भी कोई बात नही है। यह सब भूल जाना है। जिसे अपना कर्तव्य पालन करना है उसे दूसरे जो भी कहें उससे निर्भय रहना चाहिए।

खातेमें मेरे नामे जो पैसा निकलता है उसका हिसाब मुझे भेजें। जो पैसा छापाखानेके लिए दिया गया है वह अभी मैंने जमा नही किया।

मो० क० गांधीके सलाम

श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
११० फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ५११

१. यह गांधीजीके २७ जून १९०५ के पत्रका उत्तर था। देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ५१२।

९. ऑरेंज रिवर उपनिवेशके कानून

इस अंकमें हम ऑरेंज रिवर उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें दो महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। पहला पत्र उक्त उपनिवेशके उपनिवेश-सचिवका वह संक्षिप्त और विलम्बित उत्तर है, जोकि उन्होंने जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा एशियाई-विरोधी नगरपालिका-कानूनोंके विरुद्ध की गई आपत्तिपर भेजा है। ये कानून समय-समयपर ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी नगरपालिकाओंने बनाये हैं और लेफ्टिनेंट गवर्नरने स्वीकृत किये हैं। दूसरा पत्र आदिवासी-रक्षक सभाके मंत्री श्री एच० आर० फॉक्सबोर्नका है जो उन्होंने श्री लिटिलटनके[1] नाम लिखा है। ये दोनों एक-दूसरेसे बिलकुल उलटे हैं। उपनिवेश-सचिवने लिखा है कि सरकारका इरादा ऐसा कोई कानून बनानेका नहीं है जिससे कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी नगरपालिकाओंके वर्तमान स्थानिक शासन-अधिकारोंमें किसी प्रकारकी कमी हो। हमारी सम्मतिमें यह इस प्रश्नकी सचाई स्वीकार कर लेना है। ब्रिटिश भारतीय संघने इन अधिकारोंको कम करनेकी माँग कभी नहीं की, क्योंकि लेफ्टिनेंट गवर्नरको पहले ही निषेधाधिकार प्राप्त है। जबतक लेफ्टिनेंट गवर्नर मंजूरी न दें तबतक कोई भी उपनियम लागू नहीं होता, और ऑरेंज रिवर उपनिवेश तक में हमें ऐसे किसी कानूनका पता नहीं जो लेफ्टिनेंट गवर्नरको किसी नगर-पालिकाके बनाये हुए उपनियमोंपर मंजूरी देनेके लिए मजबूर करता हो। इसके विपरीत, परम-श्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको हिदायतें दी गई हैं कि वे किसी भी रंगभेदकारी कानूनपर मंजूरी न दें। और यह सभी मानेंगे कि जब वे सारे उपनिवेशके कानूनोंके विषयमें ऐसा नहीं कर सकते, तब वे उपनिवेशकी किसी खास नगरपालिकामें लागू कानूनोंके विषयमें भी ऐसा नहीं कर सकते। उपनिवेश-सचिवने जो कारण बताया है वह व्यंग्यात्मक है। उन्होंने लिखा है, "चूँकि उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंकी संख्या इतनी थोड़ी है, इसलिए मेरा खयाल है कि, आप भी मानेंगे कि आपके उठाये प्रश्नका 'व्यावहारिक' महत्त्व बहुत नहीं है।" 'व्यावहारिक' शब्दके नीचे, पत्रमें रेखा खिंची हुई है। इसका अर्थ क्या है? इससे सिर्फ यह प्रकट होता है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशके दरवाजे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए सदा बन्द रहेंगे। और जो कोई ब्रिटिश भारतीय वहाँ आयेगा वह इन प्रतिबन्धक अधिकारोंके बावजूद वैसा करेगा, और यदि वह आपत्ति करता है तो उससे यह कह दिया जायेगा कि ये कानून रद नहीं किये जा सकते; मुँहतोड़ जवाब दिया जायेगा: "अब तो मौका निकल गया है।" क्या हम उपनिवेश-सचिवसे पूछ नहीं सकते कि यदि ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें इतने थोड़े ब्रिटिश भारतीय हैं तो उनका यह अनावश्यक अपमान क्यों किया जाता है? क्या किसी प्रकारका औचित्य न होते हुए भी किसी समूचे राष्ट्रकी भावनाओंको ठेस पहुँचाना व्यावहारिक नीति-निपुणता है? ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी नगरपालिकाएँ निस्सन्देह इतना अनुचित काम नहीं करेंगी कि स्वयं उपनिवेश-सचिवके कथनानुसार जो मामला उनके लिए महत्त्वका नहीं है उसपर लेफ्टिनेंट गवर्नर तक की आपत्ति सुननेसे इनकार कर दें। ऐसा वे तभी करेंगी जबकि उन्हें अपनी कुछ भी हानि न पहुँचानेवाले लोगोंका अकारण अपमान करनेमें आनन्द आता हो। परन्तु उपनिवेश-सचिवके पत्रकी चर्चा हम अधिक नहीं करेंगे। हमें प्रसन्नता है कि ब्रिटिश भारतीय संघ इस मामलेमें पहले ही कदम उठा चुका है और उच्चायुक्तकी सेवामें प्रार्थनापत्र भेज चुका है।

१. अल्फ्रेड लिटिल्टन, उपनिवेश-मन्त्री, १९०३–५।

उपनिवेश-सचिवको भेजे गये श्री फॉक्सबोर्नके पत्रको उक्त पत्रसे विपरीत देखकर हमें प्रसन्नता हुई। हम इस महत्त्वपूर्ण पत्रकी ओर, जिसे हमने अपने सहयोगी 'इंडिया' से उद्धृत किया है, सभी दक्षिण आफ्रिकी साम्राज्य हितैषियोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। आदिवासी-रक्षक सभाके विरुद्ध दक्षिण आफ्रिकामें अक्सर बहुत-कुछ कहा गया है। परन्तु हमें आशा है कि दक्षिण आफ्रिकाके समाचारपत्र और उनके पाठक प्रत्येक बातका निर्णय उसके गुणावगुणके आधारपर करेंगे, और अपनी पहलेसे बनी द्वेष-भावनाके कारण आदिवासी-रक्षक सभाके कार्यकी निन्दा न करेंगे। आखिर, उसके सदस्योंमें कई उदात्ततम अंग्रेज भी तो हैं। इस मामलेमें श्री फॉक्सबोर्नको कई आश्वासन भी दिये गये थे जो अभी पूरे होने शेष हैं। उन्होंने उपनिवेश-सचिवको याद दिलाया है कि युद्धसे पहले उनके संघके प्रार्थनापत्रोंके उत्तरमें कुछ वादे किये गये थे। इस कारण, वे "आशा करनेका साहस करते हैं कि उन वादोंको पूरा करनेमें बिलकुल विलम्ब न किया जायेगा।" और लॉर्ड मिलनरके कथनसे उनकी "यह आशा बढ़ी है कि कमसे-कम उन रंगदार लोगोंके सम्बन्धमें तो ये वादे पूरे कर ही दिये जायेंगे, जो ब्रिटिश प्रजाजन हैं और असभ्य नहीं हैं।" साम्राज्य-सरकारको एक पेचीदा सवाल हल करना है। या तो उसे सर आर्थर लालीकी[1] सलाह माननी पड़ेगी और साहसके साथ वादा-खिलाफी करनी पड़ेगी, या ब्रिटिश परम्पराओंके अनुसार अपने वादे पूरे करने होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-७-१९०५

१०. चीनी और गन्दी भाषा

ट्रान्सवालकी खानोंके गोरोंका एक शिष्टमण्डल लॉर्ड सेल्बोर्नसे १ जुलाईको मिला था। उसने उनसे माँग की कि चीनी मजदूरोंसे गोरोंकी रक्षा की जानी चाहिए। उसने उन्हें बताया कि गोरे चीनियोंसे खराब बर्ताव नहीं करते। एक गोरेके नियन्त्रणमें ३० या ४० चीनी काम करते हैं, इसलिए दंगेके समय चीनियोंके लिए एक गोरेकी जान ले लेना कठिन नहीं है। चीनी बार-बार गन्दी भाषाके प्रयोगसे, इशारोंसे और मुँह बिचकाकर गोरे अधिकारीका अपमान करते हैं। वह भाषा इतनी गन्दी होती है कि शिष्टमण्डलके दुहराने योग्य नहीं है। शिष्टमण्डलके सदस्योंने बताया कि कोई भी गोरा ऐसा अपमान सहन करके चुप बैठा नहीं रह सकता। उत्तरमें लॉर्ड सेल्बोर्नने कहा कि ४०,००० चीनी मजदूरोंमें शारीरिक हमले करनेके मामले अबतक केवल २० हुए हैं। उनकी भाषा-सम्बन्धी शिकायत वजनदार नहीं है, क्योंकि खुद गोरे गन्दी भाषाका व्यवहार करके बुरा उदाहरण उपस्थित करते हैं। उनके सामने शराब पीना और अनुचित आचरण करना, खुद अपने लिए नुकसानदेह हो जाता है। ये भाषासे बिलकुल अनजान लोग अपने प्रति प्रयुक्त गन्दे शब्दोंको तोतोंकी तरह रट लेते हैं, और फिर उन्हें सुधारना बहुत कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त [उन्होंने कहा कि गोरोंका गोरापन गोरी चमड़ीमें ही नहीं है, उन्हें अपने भीतर भी गोरा होना चाहिए; अर्थात् उनमें अपने अच्छे बर्तावसे सामनेके मनुष्यके मनमें आदर, आज्ञाकारिता और भय उत्पन्न करनेकी खूबी होनी चाहिए। तभी वे गोरे कहे जा सकते हैं।] संक्षेपमें चीनियोंके खराब बर्तावके लिए उन्होंने गोरोंको ही जिम्मेवार माना और अच्छे बर्तावसे चीनियोंको वशमें करनेकी जरूरत बताई।

१. ट्रान्सवालमें भूतपूर्व उच्चायुक्त।

शिष्टमण्डलने कुछ और भी दिक्कतें बताईं जिनपर लॉर्ड सेल्बोर्नने आवश्यक ध्यान देनेका वचन दिया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-७-१९०५

११. भारतमें नमकपर कर

डॉ० हचिन्सन द्वारा कड़ी आलोचना

भारतमें नमकपर कर है, इसके विरोधमें हमेशा आलोचनाएँ हुआ करती हैं। इस बार सुविख्यात डॉ० हचिन्सनने इसकी आलोचना की है। वे कहते हैं कि जापानमें इस प्रकारका कर था, वह अब समाप्त कर दिया गया है। फिर भी ब्रिटिश सरकार इसे कायम रखती है, यह बड़ी शर्मकी बात है। यह कर तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। नमक ऐसी चीज है जिसकी आहारमें आवश्यकता होती है। भारतमें कुष्ठ रोग बढ़ रहा है उसका कारण नमक-कर है, ऐसा कुछ अंशमें कहा जा सकता है। डॉ० हचिन्सन मानते हैं कि नमक-कर एक जंगली रिवाज है और ब्रिटिश सरकारके लिए अशोभनीय है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-७-१९०५

१२. पत्र : दादा उस्मानको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ८, १९०५

सेठ दादा उस्मान,

आपका पत्र मिला। मुझे लगता है, आपके फ्राइहीड जानेकी पूरी जरूरत है। वहाँ व्यवस्था किये बिना आप कुछ नही कर सकेंगे, ऐसी आशंका है। मुझसे यहाँ बैठे-बैठे कुछ नही होता। यदि जुर्माना हुआ तो आपकी गैरहाजिरीमें दूकान खुली रखनेकी सिफारिश नही कर सकूँगा।

हुंडामलकी अपीलपर[1] बहुत कुछ निर्भर रहेगा। उस अपीलके सम्बन्धमें पूरी-पूरी सावधानी रखवाएँ। उस अपीलमें कौन पैरवी करेगा यह लिखें। उसमे जीत हो तो दूकान फिर खोल सकेंगे। बीचमें आप टाउन क्लार्क आदिसे जाकर मिलेंगे तो फायदा होना सम्भव है।

अब्दुल्ला सेठ हिसाब न दें तो मुझे घबरानेकी जरूरत दिखाई नही देती। दादा सेठको ज्यादा पैसा मिलेगा, यह आशा तो छोड़ ही दी है। इसलिए घबरानेका कारण तनिक भी नही है।

मो० क० गांधीके सलाम

सेठ दादा उस्मान
बॉक्स ८८
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ५८२

१. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ३७५, ३८५-८६ और ३९४।

१३. पत्र : पारसी कावसजीको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ८, १९०५

रा० रा०[1] पारसी कावसजी,

आपका पत्र मिला। मुझे दुःख है कि आपको मुझसे पैसेकी मदद मिले, ऐसी मेरी स्थिति नही है।

मो० क० गांधी

श्री पारसी कावसजी
११५ फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ५८४

१४. पत्र : जे० डी विलियर्सको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १२, १९०५

सेवामें
श्री जे० डी विलियर्स
१८ एजिस बिल्डिंग्ज़
जोहानिसबर्ग

प्रिय महोदय,

विषय : इस्माइल और ल्यूकस

इस आशासे कि मैं किसी समय स्वयं आपसे मिलकर बिलकी रकममें कमी करा सकूँगा, मैंने अभीतक जानबूझकर आपको चैक भेजनेमे देर की है। किन्तु अत्यधिक कामके दबावसे मैं अभीतक दफ्तर छोड़कर निकल नही पाया हूँ। सैयद इस्माइलके पास जो कुछ भी सम्पत्ति थी वह इस दावेकी ही थी। इसलिए १,३०० पौंडका नुकसान और मुकदमेंके खर्चेकी अदायगी उसके लिए बहुत बड़ा घाटा है। इसलिए मैं आपसे अपने हिसाबमें खासी कमी करनेकी प्रार्थना करना चाहता हूँ। मैंने श्री ल्यूनार्डसे भी प्रार्थना की थी और उन्होने कमी करनेकी उदारता दिखाई है।

मै इसके साथ आपका बिल भेज रहा हूँ।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

संलग्न :[2]

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६३०

१. राज्यमान्य राजेश्री-श्रीमान्।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

१५. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

जोहानिसबर्ग
जुलाई १३, १९०५

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

तारीख ७ के 'गवर्नमेंट गज़ट' के पूरकमें प्रकाशित अध्यादेशके मसविदेकी उपधारा ३ का, जो उपनिवेशके कानूनोंको "नगरपालिकाकी विधि-संहिताको सामान्य रूपसे संशोधित करने" के विषयमें है, मुझे विनयपूर्वक अपने संघकी ओरसे विरोध करना पड़ रहा है।

यह देखते हुए कि एशियाई-विरोधी कानून स्थानीय सरकार और साम्राज्य सरकारके विचाराधीन है, मेरा संघ यह निवेदन करनेकी धृष्टता करता है कि नगरपालिकाओंको एशियाई 'बाजारों' के संचालनका अधिकार देना असामयिक है और वैसा करनेका मंशा उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीयोंकी भी मान-प्रतिष्ठाको नुकसान पहुँचाना है। १८८५ के कानून ३ में सरकारी अंकुशका विधान है और यह देखते हुए कि ट्रान्सवालकी नगरपालिकाएँ बहुत हद तक रंग-विद्वेषसे परिचालित होती हैं, मेरा संघ नम्रतापूर्वक निवेदन करता है कि एशियाई 'बाजारों' के संचालनका अधिकार नगरपालिकाओं या स्थानीय निकायोंको देना ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति अन्याय होगा।

इसलिए मेरा संघ आशा करता है कि सरकार उक्त धाराको वापस ले लेगी और जब-तक उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके प्रश्नको कोई अन्तिम आधार नहीं दे दिया जाता, इस मामलेको रोक रखा जायेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–७–१९०५

१६. पत्र: जालभाई व सोराबजी ब्रदर्सको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १३, १९०५

श्री जालभाई व सोराबजी ब्रदर्स
११० फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

प्रिय महोदय,

छापाखानेकी मदमें मेरे नामे जो हिसाब है, उसका उतारा आप मुझे भेजना भूल गये हैं। मेहरबानी करके उसे अपने सुभीतेसे मेरे पास भेज दें। मैं उम्मीद करता हूँ कि प्रेससे ताल्लुक रखनेवाला जो काम दिया जाता है, उसे आप मुस्तैदीके साथ करनेकी मेहरबानी करेंगे, क्योंकि फीनिक्समें अभीतक सब बातोंकी ठीक व्यवस्था नहीं हो पाई है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[पुनश्च]

आपका ११ तारीखका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि श्री लॉटनसे[1] आपको उधारी मिल गई है। मैं उसे वापस भेज रहा हूँ। आपने छगनलालको १०० पौंड दिये, इसके लिए धन्यवाद। श्री रुस्तमजीको[2] आपने ८० पौंडका ड्राफ्ट भेजा, यह जाना।

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६३३

१. एफ० ए० लॉटन, जोहानिसबर्गके एक प्रमुख वकील। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६।
२. पारसी रुस्तमजी, भारतीय व्यापारी और गांधीजीके सहकार्यकर्ता। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

१७. पत्र : हाइन व कारूथर्सको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १३, १९०५

श्री हाइन व कारूथर्स
पो० ऑ० बॉक्स २६१
जोहानिसबर्ग

प्रिय महोदय,

विषय : मृत अब्दुल करीमकी जायदाद

मुझे अफसोस है कि आपने जो प्रलेख अनुवादके लिए मेरे पास छोड़ दिया था, उसे मैंने अभी बहुत थोड़ा ही किया है। अब भी २४ घने लिखे हुए पन्ने अनुवादके लिए शेष हैं। मुझे कदाचित् यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि यह अनुवाद बहुत ही महँगा पड़ेगा। जितना काम मैंने किया है उसकी रकम २ पौंडसे अधिक हो गई है और समाप्त करते-करते वह लगभग १२ पौंड हो जायेगी। फिर भी मैंने जो कुछ अबतक पढ़ लिया है, उससे जान पड़ता है कि पोरबन्दरमें मेरे प्रतिनिधिको प्रमाणित नकल पानेमें बहुत चक्करका रास्ता अख्तियार करना पड़ा है। उसका कारण कानूनका परिवर्तन है, जिसके मुताबिक उन सम्बन्धित व्यक्तियोंके अतिरिक्त जो अदालतके अधिकारक्षेत्रमें आते हैं, कोई दूसरा व्यक्ति प्रमाणित नकलें नहीं पा सकता। बहरहाल, यदि आप मुझे अनुवादका काम जारी रखनेको कहें, तो मैं वैसा करूँगा। आपका पूरा अनुवाद देनेमें मुझे लगभग एक हफ्ता लग जायेगा। क्योंकि मेरी वर्तमान व्यस्तताओंके कारण मेरे लिए उसपर पूरे दो दिन लगाना सम्भव नहीं है, जो इस कामके लिए आवश्यक हैं। मैं सिर्फ थोड़ा-सा समय रोज इस कार्यमें लगा सकता हूँ।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६४९

१८. पत्र : उमर हाजी आमदको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १३, १९०५

सेठ श्री उमर हाजी आमद,

आपका पत्र मिला। अखबारकी कतरन वापस भेजता हूँ। इससे मालूम होता है कि 'ओपिनियन' का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

इसके साथ अंग्रेजीका पत्र वकीलको पढ़ानेके इरादेसे भेज रहा हूँ। वसीयतसे अनुसार अदालतकी तरफसे किसी ट्रस्टीकी नियुक्ति होनी चाहिए। बादमें जब कागज-पत्र यहाँ आयेंगे तब जायदाद आप दोनोंके नाम होगी। फिर पट्टा दर्ज होगा। मैंने जो अंग्रेजीमें लिखा है वह आप समझ जायेंगे, इसलिए ज्यादा विस्तारसे नहीं समझाता।

मो० क० गांधीके सलाम

सेठ उमर हाजी आमद झवेरी[1]
बॉक्स ४४१
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे, पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६५१

१९. पत्र : टाउन क्लार्कको[2]

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १४, १९०५

सेवामें
टाउन क्लार्क
जोहानिसबर्ग

महोदय,

विषय : भारतीयोंकी ट्रामगाड़ियोंमें यात्रा

इस विषयमें हमारी जो बातचीत हुई थी उसपर मैंने शान्ति और धीरजसे विचार किया है और अपने मुवक्किलसे सलाह-मशविरा कर लिया है। यदि इस बातका निश्चित आश्वासन दिया जा सके कि नई ट्रामगाड़ियोंमें भारतीयोंको यात्रा करनेकी सुविधाएँ दी जायेंगी, तो मेरा आसामी अदालतमें जाँच-मुकदमा दायर नहीं करेगा। किन्तु यदि ऐसा नहीं हो सके तो यह योग्य जान पड़ता है कि इस मामलेका निश्चित फैसला करा लिया जाये। मेरा व्यक्तिगत अनुभव यह रहा है कि जहाँ कुछ अधिकारोंका अकारण अभाव मान लिया गया है, वहाँ ऐसी मान्यताके बलपर ही

१. मूल गुजरातीमें 'जोहरी' है।
२. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ५०३।

आगेका प्रबन्ध करनेका नियम-सा बन जाता है और पहले जिस प्रश्नपर बातचीत हो सकती थी, वहाँ नया प्रबन्ध हो जानेपर निश्चित रूपसे ऐसे अधिकार या अधिकारोंके खिलाफ निर्णय हो जाता है? इसलिए मैं यह माननेकी धृष्टता करता हूँ कि ऊपर सुझाया गया प्रस्ताव बिलकुल संगत है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६५९

२०. केप प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम

केप टाउनकी ब्रिटिश भारतीय समिति (ब्रिटिश इंडियन लीग)ने केप प्रवासी-अधिनियमपर अमलके विषयमें उपनिवेश-सचिवको एक प्रार्थनापत्र भेजा था। उसके उत्तरमें उनके दफ्तरसे समितिके अध्यक्षको जो पत्र मिला है उसे हम इसी अंकमें अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। समितिने भारतीय भाषाओंको मान्यता देनेके विषयमें जो प्रार्थना की थी उसे उपनिवेश-सचिवने एक वाक्यमें ही उड़ा दिया है। हमें आशा है कि समिति इस प्रश्नको यही न छोड़ देगी। उपनिवेश-सचिवके पत्रमें 'निवासी' शब्दका जो अर्थ लगाया गया है वह अत्यन्त असंतोषजनक है। उपनिवेशका प्रत्येक भारतीय यह साबित नही कर सकता कि वह उपनिवेशमें अचल संपत्तिका मालिक है या उसके स्त्री और बाल-बच्चे यहाँ मौजूद है। यदि इसी अर्थपर आग्रह किया जाता है तो, उपनिवेश-सचिवका इरादा वैसा करनेका न होते हुए भी, इससे अनावश्यक कठिनाइयाँ हुए बिना न रहेंगी। हो सकता है कि कोई व्यक्ति केपमे अपना रोजगार छोड़ दे, केवल कुछ समयके लिए भारत चला जाये, और अपने आपको सदाके लिए केपसे निष्कासित पाये, क्योंकि उसकी स्त्री और उसके बाल-बच्चे उपनिवेशमें नही है या वह अचल सम्पत्तिका मालिक नही है। इसका अर्थ होगा उस गरीब दूकानदारकी बिलकुल बरबादी, जो भ्रमवश अपने आपको सुरक्षित समझकर, अपना रोजगार अस्थायी रूपसे अपने मैनेजरके सुपुर्द करके भारत चला गया हो। यह उदाहरण काल्पनिक भी नही है, क्योंकि हम जानते है कि ऐसे अनेक भारतीयोंको केपमें फिर आनेसे इनकार करनेकी घटनाएँ सचमुच घटित हो चुकी हैं। इस कारण न्यायका तकाजा पूरा करनेके लिए, कर्नल क्रू[1] कमसे-कम जो कुछ कर सकते है वह है उन लोगोके अधिकार मान्य कर लेना जो फिर यहाँ लौटनेके इरादेसे अपना रोजगार या नौकरी छोड़कर चले गये हों। तब वे नर्मीसे व्यवहार करनेकी बात कह सकेंगे, क्योंकि अभीतक तो उनकी व्याख्याके अनुसार कानूनके व्यवहारमें नर्मी बिलकुल नही है, कठोरता ही है। और तभी ब्रिटिश भारतीय समिति सरकारके रुखको मुनासिब मान सकेगी। अब तो हम, उनका अधिकतम सम्मान करते हुए भी, यह खयाल करते है कि यह कानून अन्यायपूर्ण और अनुचित है और केपवासी ब्रिटिश भारतीयोंको अवश्य ही भारी कठिनाइयोमें डाल देगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-७-१९०५

१. केप कालोनीके उपनिवेश-सचिव।

२१. श्री वाछा[1] और भारतीय

राष्ट्रीय महासभाके सयुक्त मत्री श्री वाछाने हमे एक पत्र लिखा है, जो प्रोत्साहन, आशा और सुझावसे भरा है। हम उसका मुख्य भाग अन्य स्तम्भमे प्रकाशित करते है। उन्होने एक मिलता-जुलता उदाहरण दिया है, जो दक्षिण आफ्रिकामे ब्रिटिश भारतीयोके दर्जेके संबधमे चालू विवादकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा है:

> **आपके यहाँके प्रवासी यूरोपीय यह भूल गये मालूम पड़ते हैं कि खुद व्यापारी और व्यवसायी ईस्ट इंडिया कम्पनीके विरुद्ध, जो उन्हें १८३३ का कानून बनने तक भारतमें व्यापार करनेसे मना करती थी, बड़ी तीखी भाषामें शिकायत किया करते थे। यहाँ जो आते थे वे 'अनधिकारी' कहे जाते थे, परन्तु, अनधिकारियोंमें धीरता और लगन थी।**

और हम जानते हैं कि वे सफल हुए। दक्षिण आफ्रिकाकी हालतोमे भी लगन और धीरता आवश्यक है। १८३३ में न्याय जितना उनके पक्षमे था उसकी अपेक्षा अब हमारे पक्षमे अधिक है। दक्षिण आफ्रिकामे ब्रिटिश भारतीयोको अपने दर्जेमें सुधार करवानेका तिहरा अधिकार है। १८५८ की घोषणाके विरुद्ध कुछ भी क्यों न कहा जाये, उसमे उन्हे ब्रिटिश प्रजाके सम्पूर्ण अधिकारोका आश्वासन दिया गया है। वे यह दिखा चुके है कि दक्षिण आफ्रिकामे उनका जीवन परिश्रमी, संयमी, कानूनका पालन करनेवाला और ईमानदारीका रहा है; और जैसा बहुत बार माना जा चुका है, वे देशका विकास करनेमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। जिम्मेवार मन्त्रियोने उनसे बार-बार वादे भी किये है कि दक्षिण आफ्रिकामे उनके साथ, विशेषत: उनके नागरिक अधिकारोंके बारेमे, न्याय और समानताका बरताव किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–७–१९०५

२२. नेटालमें मकान-कर

नेटाल 'गवर्नमेंट गजट' में मकान-करके सम्बन्धमें जो विधेयक प्रकाशित हुआ है उसके विरुद्ध लोगोकी भावना बढती जाती है। मैरित्सबर्गमे १० तारीखकी रातको इस विषयपर विचार करनेके लिए एक आम सभा की गई थी। डर्बनमें गुरुवारकी शामको सभा की गई है। इस विधेयकके विरुद्ध कदम उठानेके लिए बहुत-से लोगोंने अलग-अलग अर्जियोंपर हस्ताक्षर किये हैं। प्रस्तावित मकान-कर व्यक्ति-करसे भी अधिक अप्रिय हो गया है। इस विधेयकमें सूचित प्रस्ताव बहुत ही अपूर्ण है और हमेशाके लिए तो सम्भव है ही नही, उसे थोड़े समयके लिए मजूर कराना जोखिम-भरा है। यदि यह कर न्यायपूर्वक लगाया जाये तो स्थायी करके रूपमें वह व्यक्ति-करसे बेहतर कहा जा सकता है। व्यक्ति-कर तो सदाके लिए सहन करनेके योग्य है ही नही, यद्यपि कुछ देशोमे वह वसूल किया जाता है। मकान-करके विरुद्ध लोगोंकी जो

१. दिनशा एदुलजी वाछा (१८४४–१९३६): १९०१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनके अध्यक्ष; वाइसरायकी विधान परिषद्के नामजद सदस्य; देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२१।

विरोधी भावना है उसकी वजहसे या तो उसका रूप बदल देना चाहिए और ऐसा न हो तो उसे हटा ही देना चाहिए, ताकि व्यक्ति-करके प्रति विरोधी भावना पैदा न हो।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-७-१९०५

२३. जापान द्वारा संधिकी तैयारी

सदेलियन टापूकी जीत

जापानियोंने सदेलियन नामके रूसी टापूपर कब्जा करके उसमें अपनी फौजें उतार दी है। यह टापू ६७० मील लम्बा और २० से लेकर १५० मील तक चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल २४,५५० वर्ग मील है, अर्थात् यह सौराष्ट्रसे अधिक विस्तृत है। इस टापूका दक्षिणी भाग सन् १८७५ तक जापानके कब्जेमें था, परन्तु इसके बाद इसे जापानने क्यूराइल टापूके[1] बदलेमें रूसियोंको दे दिया था। इसमें मिट्टीके तेलके बहुतसे कुएँ है। यहाँ कोयला भी बहुत निकलता है। इतने बड़े टापूपर जापानी अधिकार हो जानेका चालू सन्धिकी तैयारीपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। 'टाइम्स' पत्रका कहना है कि इस सारे युद्धके दौरानमें अन्य किसी घटनाने रूसी लोगोंको इतना दुःख नही पहुँचाया था। इस घटनाने यह बता दिया है कि रूसी अपनी सीमाकी रक्षा करनेमें सर्वथा असमर्थ है। इस टापूके रूसके हाथमें आये हुए भी ५० वर्ष पूरे नहीं हुए है। रूसने इसको राजनीतिक दाँवपेचोंसे अपने कब्जेमें लिया था और इससे जापानको नुकसान उठाना पड़ा था। यदि इस भारी युद्धका प्रसंग न आता तो यह टापू आज भी रूसके हाथमें ही रहता। बहुत अरसेसे जापानने इस टापूपर अपनी नजर लगा रखी थी, और इस सामयिक जीतसे यह खयाल किया जा रहा है कि वाशिंगटनकी संधि-वार्तामें जापानकी स्थिति बहुत मजबूत रहेगी। संधि-समितिकी बैठक होते-होते हमें यह समाचार सुननेको मिल सकता है कि मार्शल ओयामाने रूसी सेनाध्यक्ष लिनेविचको करारी चोट दी है। जापानी सेना अल्पकालिक युद्ध-विराम करनेसे इनकार करती है और जोरदार लड़ाईसे रूसको वास्तविक संधिके लिए मजबूर करनेका उसका इरादा है। और वह साहसके साथ कहती है कि संधिके सिवा दूसरा चारा नही है, यह वह दिखा देगी और संधिकी वार्ता करनेवाले रूसी प्रतिनिधियोंको अन्तमें जापानकी माँगें मंजूर करनी ही पड़ेंगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-७-१९०५

[1] उत्तर प्रशान्त महासागरमें एक छोटा-सा द्वीप-समूह।

२४. पत्र : छगनलाल गांधीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जुलाई १५, १९०५

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे पास आज तक का हिसाब भेजा जा चुका है। उसपर से भूकम्प कोषमें[1] जो रकमें मिली हैं तुम्हें उनकी जानकारी हो जायेगी। कुमारी न्यूफ्लीस द्वारा भेजी गई डर्बन बाढ़ कोषकी रकमें भी उसमें शामिल हैं। वे तुम श्री उमरको दे सकते हो। पत्रोंके लिए कोरे पुरौनी-कागज और कच्ची लिखाईके लिए गड्डियाँ मिल गई है। तुम्हारे निरीक्षण सम्बन्धी उल्लेखको मैं ठीक-ठीक नही समझा। तुम्हें चाहिए कि मुझे निश्चित उदाहरण भेजो। तब मैं कार्य-पद्धतिको अच्छी तरह समझ सकूँगा। मैं यह भी जानना चाहूँगा कि नुकसान कहाँ हुआ है या कहाँ होता आ रहा है। डाह्या जोगीका पैसा मिल गया है। वह रकम १ पौंड २ शि० ६ पें० है। मुझे मालूम है कि सामग्री देरसे भेजी गई थी। जितनी मुमकिन है, उतनी सामग्री आज भेज रहा हूँ। यदि कुछ बची तो वह कल भेज दी जायेगी। वेस्टने[2] मुझे लिखा है कि मगनलालको सितम्बरके करीब रवाना होना और दिसम्बरमें लौटना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा है कि तुम्हारी ऐसी राय है। यदि मगनलालके बिना काम चलाया जा सकता हो, तो मुझे कोई आपत्ति नही है। कावा और आनन्दलालका क्या हाल है? क्या पिल्ले अब बिलकुल अच्छा हो गया है? मगनलालको तमिल पुस्तकें मिल गईं? उसने पढ़ाई शुरू कर दी है?

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च]

वाई० एम० सी० ए०, जोहानिसबर्गको एक सालके लिए 'इं० ओ०' भेजो। पैसा श्री मैकिंटायरसे[3] मिल गया है।

मो० क० गां०

भूकम्प और कुमारी न्यूफ्लीसके हिसाबके परचे अलग-अलग बनेंगे।

श्री छगनलाल खुशालचंद गांधी
मार्फत, इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२४५) से

१. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ४५८।

२. अल्बर्ट वेस्टसे गांधीजीकी मुलाकात १९०४ में जोहानिसबर्गके एक उपाहार-गृहमें हुई थी। वे प्लेगके समय रोगियोंकी शुश्रूषाके लिए जोहानिसबर्गमें गांधीजीके पास आये थे। परन्तु उसके बजाय गांधीजीने *इंडियन ओपिनियन* और उसके छापेखानेका प्रबन्ध उनके हाथों सौंप दिया। गांधीजी उनके विषयमें लिखते हैं: उस दिनसे लेकर मेरे दक्षिण आफ्रिका छोड़नेके दिन तक वे मेरे सुख-दुखके साथी रहे।" देखिए, *आत्मकथा* भाग ४, अध्याय १६।

३. एक स्कॉट थियॉसोफिस्ट जो गांधीजीके मुंशी थे। देखिए, *आत्मकथा* (गुजराती), भाग ४, अध्याय २१।

२५. पत्र: उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १७, १९०५

सेठ श्री उमर हाजी आमद झवेरी,

आपका पत्र मिला। सेठ हाजी इस्माइलके[1] दोनों पत्र वापस भेजता हूँ। उनके लिखनेका ढंग मुझे जरा भी पसन्द नहीं आया। इससे अनुमान होता है कि उनके खर्चपर नियन्त्रण रखना मुश्किल होगा। यदि वहाँ किरायेके बराबर खर्च हो जाता हो तो इस सम्बन्धमें क्या करना उचित होगा, यह सोचनेकी बात है।

व्यापारमें पोरबन्दरका खर्च पूरा करने लायक मुनाफा न हो तो यह मूल पूंजीको खाना ही है। मुझे लगता है कि फिलहाल कलहमें वृद्धि रोकनेके लिए पोरबन्दरको १०० पौंडके हिसाबसे भेजना पड़ेगा। मैं आज सेठ हाजी इस्माइलको पत्र[2] लिख रहा हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६७८

२६. पत्र: हाजी इस्माइल हाजी अबूबकरको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १७, १९०५

श्री सेठ हाजी इस्माइल हाजी अबूबकर,

उमर सेठका पत्र आया है। वे उसमें लिखते हैं कि यह खर्च ज्यादा है। आपके पिछले दो पत्र भी मैंने पढ़े। मुझे लगता है कि आपने जो पत्र लिखे हैं वे जितने चाहिए उतने शिष्टतापूर्ण नहीं हैं। उमर सेठ आपके काका हैं। इसलिए आपकी तरफसे उनको लिखा पत्र आपके खानदानी गौरवके अनुकूल शिष्टतापूर्ण होना चाहिए।

खर्चके बारेमें जो उमर सेठ कहते हैं वह विचारणीय है। जब उमर सेठ विलायत गये तबमें और आजके समयमें बड़ा अन्तर है। इस समय किराये आधे हो चुके हैं और अभी घटेंगे। यहाँका खर्च किरायेकी आयमें से पूरा होता है। इसलिए मूल पूंजीपर गुजारा करनेका वक्त आ गया है। मुझे लगता है कि आपकी जायदाद ऐसी है कि मूल पूंजीपर गुजारा करनेकी बात नहीं उठनी चाहिए। जिन्होंने पूंजीपर गुजारा किया है ऐसे करोड़पतियोंका पैसा भी खत्म हो गया है। इसलिए आपको मेरी खास सलाह है कि अपने घरका खर्च विचार कर करें। मुझे

१. उमर हाजी आमदके भतीजे।
२. देखिए अगला शीर्षक।

लगता है कि बहुत-कुछ खर्च कम हो सकता है। अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखें। कसरत और नियमित भोजनकी खास जरूरत है।

मो० क० गांधीके सलाम

श्री हाजी इस्माइल हाजी अबूबकर आमद झवेरी
पोरबन्दर
काठियावाड़
बरास्ता बम्बई

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६९२

२७. पत्र : 'डेली एक्सप्रेसको'

जोहानिसबर्ग
[जुलाई १७, १९०५ के बाद]

सेवामें,
सम्पादक
'डेली एक्सप्रेस'

महोदय,

आपके एक पत्र-लेखकने आपके पत्रके इसी १७ तारीखके अंकमें 'सिकरैमसैम' के ठाटदार उपनामसे ब्रिटिश भारतीयोंपर आक्रमण किया है। मुझे भरोसा है कि आप मुझे उसका उत्तर देनेका अवसर देंगे। एक सीधी-सादी भारतीय कहावत है कि "आप घोड़ेको पानीके पास ले जा सकते है, पर उसे पानी पीनेके लिए बाध्य नही कर सकते।" इसी तरह जो लोग अपने सम्मुख उपस्थित तथ्योसे आँखें मूँद लेते हैं उनकी गलत धारणाएँ मिटाई नही जा सकती। मुझे बहुत आशंका है कि आपका पत्र-लेखक उसी श्रेणीका है। तथापि, उसकी जानकारीके लिए मैं फिरसे यह प्रश्न पूछता हूँ — अगर युद्धके पहले केवल तेरह भारतीय ('कुली' नही, जैसा कि आपका पत्र-लेखक लिखना पसन्द करता है) 'दूकानदार, छोटे व्यापारी या फेरीवाले' थे तो फिर ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षकी चुनौती[1] श्री क्लाइनेनबर्गने मंजूर क्यों नही की? याद रखिये कि इन दूकानदारोंके नाम समाचारपत्रोको भेज दिये गये हैं। मैं देखता हूँ कि आपका पत्र-लेखक एक कदम और आगे बढ़ गया है। वह साहसपूर्वक यह कहता है कि इस तेरहकी संख्यामें दूकानदार, छोटे व्यापारी और फेरीवाले भी शामिल हैं। दुर्भाग्यसे उसने एक अशुभ[2] संख्या पसन्द की है। मैं आपके पास १०० पौंड जमा करनेको तैयार हूँ। अगर मैं दो मध्यस्थोंके सामने यह साबित न कर सकूँ कि युद्धके पूर्व पीटर्सबर्गमें भारतीय दूकानदारों, छोटे व्यापारियों और फेरीवालोंकी संख्या आपके पत्र-लेखककी बताई संख्याकी दुगुनीसे भी ज्यादा थी, तो वह रकम आपके पत्र-लेखकके सूचित किये हुए किसी भी भारतीय-विरोधी संघको

१. देखिए खण्ड-४, पृष्ठ ३५६।
२. पश्चिमके ईसाई देशोंमें १३ की संख्या अशुभ मानी जाती है।

दे दी जाये। शर्त सिर्फ यह है कि अगर निर्णय मेरे पक्षमें हो तो आपका पत्र-लेखक भी ब्रिटिश भारतीय संघको उतनी ही रकम देनेके लिए तैयार हो। इन दो मध्यस्थोंमें से एकका चुनाव आपका पत्र-लेखक करेगा और दूसरेका मैं। एक सरपंच चुन लेनेका अधिकार उन दोनोंको होगा। यह हुआ 'सिकरैमसैम' के आँकड़ोंके बारेमें।

जहाँतक इस आरोपका सम्बन्ध है कि वतनी ब्रिटिश भारतीयों द्वारा मूड़े जा रहे हैं, मैं आपके पत्र-लेखकका ध्यान सर जेम्स हलेटकी इस साक्षीकी[1] ओर दिला सकता हूँ, जो उन्होंने वतनी कार्य-आयोगके सामने इस विषयमें दी थी कि अधिक बड़ा कुकर्मी कौन है — यूरोपीय या भारतीय? आपके पत्र-लेखकके अन्य आरोपोंके बारेमें, जो उसे दी गई 'जानकारी' पर आधारित हैं, मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि समझदार लोग उनकी सच्ची कीमतको समझकर ही उनका मूल्य आँकेंगे। अगर भारतीय कोई भी बेईमानीका व्यापार कर रहे हैं और पत्र-लेखकको उसकी जानकारी है तो निश्चय ही उसका इलाज उसीके हाथोंमें है। और अगर व्यापारिक परवानोंका प्रश्न अबतक अन्तिम रूपसे तय नहीं हुआ तो उसका कारण यह है कि 'सिकरैम-सैम' और उनके साथी ब्रिटिश भारतीयोंके सुझाये हुए उस अत्यन्त उचित समझौतेको भी मान्य करनेको तैयार नहीं हैं जिसके द्वारा नये परवानोंका नियन्त्रण नगर-परिषदके सदस्योंको सौंप दिया जायेगा और इस परिषदका चुनाव अधिकतर 'सिकरैमसैम' और उनके साथी ही करेंगे। महाशय, युद्धके पूर्व ब्रिटिश भारतीय प्रश्नका रूप जैसा था उसका थोड़ा-बहुत अनुभव आपको है। साथ ही आपको ब्रिटिश भारतीयोंका अनुभव भी है। पत्रकारितामें आपने स्वतन्त्र रुख अख्तियार किया है। मुझे निश्चय है, आप यह नहीं चाहते कि ब्रिटिश साम्राज्यके संघटक अंगोंके बीच जातीय विद्वेष बढ़े। संभवतः आप यह भी जानते होंगे कि आपके पत्र-लेखकने जिन तथ्योंको पेश किया है उनमें से कुछ असत्य हैं। जिन वक्तव्योंके प्रत्यक्ष मिथ्या होनेमें कोई सन्देह नहीं है उनकी भूल सुधारकर क्या आप अपने शुभव्रतका ही पालन नहीं करेंगे? [भारतीय केवल न्याय चाहते हैं, अनुग्रह नहीं।] ब्रिटिश झंडेके नीचे न्याय दुर्लभ वस्तु नहीं होनी चाहिए।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २९–७–१९०५

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४८८–८९।

२८. पत्र : रेवाशंकर झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १८, १९०५

आदरणीय रेवाशंकरभाई,[१]

आपका पत्र मिला। आप मेरे खातेमें ४५ रु० नामे लिखकर कैप्टन मैकग्रेगरके जमा कर लें। उतना मैंने उनके खाते नामे लिखकर आपका जमा कर लिया है।

चि० हरिलालको यही भेजनेमें कुशल दिखाई देती है। वहाँका खर्च जैसे बने वैसे कम करना बहुत जरूरी है। यहाँ मेरे ऊपर बोझा इतना है कि वहाँका खर्च उठाना मुश्किल है। उससे हरिलालका हित सधता हो, मुझे ऐसा भी नही दिखाई देता। रलियात बहनको[२] लिखे कि उन्हे अपना खर्च २० रु० से २५ रु० तक में चलाना चाहिए। मैंने भी उन्हे खर्च कम करनेके लिए लिखा है।[३]

चि० मणिलाल[४] और सूरजकी खबर पढ़कर सन्तोष हुआ है।

मोहनदासके प्रणाम

श्री रेवाशंकर जगजीवन ऐंड कं०
झवेरी बाजार
खारे कुआँके पास
बम्बई

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ६९६

२९. पत्र : रविशंकर भट्टको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई २१, १९०५

भाई श्री ५ रविशंकर भट्ट,

आपका पत्र मिला। मेरे विचारसे कोई भी भारतीय विद्वान आये हम सब उसका सम्मान करनेके लिए बाध्य है। उनके धर्मोपदेशसे हमारा सम्बन्ध नही है। उसका सम्मान करनेमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंको शामिल होना चाहिए। इसलिए मैं समझता हूँ कि प्रोफेसर परमानन्दका[५]

१. डॉ० प्राणजीवन मेहताके सगे भाई। इनके जीवन-कालमें गांधीजी बम्बई जानेपर इनके ही घरमें ठहरते थे।

२. गांधीजीकी बड़ी बहन।

३. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

४. रेवाशंकरके पुत्र।

५. आर्यसमाजके प्रमुख नेता, जो पीछे भाई परमानन्दके नामसे अधिक प्रसिद्ध हुए। वे दक्षिण आफ्रिका भी गये थे, जहाँ उन्होंने कुछ भाषण दिये थे। देखिए "प्रो० परमानन्द", पृष्ठ ५१ और "प्रो० परमानन्दको मानपत्र", पृष्ठ ११३

सम्मान करना हम सबका फर्ज है। उनके धर्मोपदेशके सम्बन्धमें, जो उसमें उनके साथी हैं वे बादमें जो करना चाहेंगे वह करेंगे। इसलिए मुझे लगता है कि आपको उनका सम्मान करनेमें पीछे नहीं हटना चाहिए। चन्दा उगाहने आदिके लिए मैंने अपनी अनुमति नहीं दी है और न देनेका विचार है।

मो० क० गांधीके यथायोग्य

श्री आर० पी० भट्ट
बॉक्स ५२९
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ७२७

३०. पत्र: मेघराज व मूडलेको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई २१, १९०५

प्रिय महोदय,

आपका ९ तारीखका पत्र मिला। मेरी समझमें अभीतक जोहानिसबर्गमें चन्दा इकट्ठा करनेकी कोई जरूरत नहीं है। मेरे पास एक शिकायत भी आ चुकी है कि वहाँ चन्दा इकट्ठा[1] करनेके सिलसिलेमें मेरे नामका उपयोग किया जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप इस स्वागतको कोई धार्मिक रूप न दें। आप जानते ही होंगे कि आर्यसमाजके उपदेश और सनातन हिन्दू धर्मके उपदेशोंमें अन्तर है, और सनातनियोंकी ओरसे एक शिकायत मेरे पास भेजी गई है। भारतसे आनेवाले किसी भी विद्वान भारतीयका आदर करना हमारा कर्तव्य है। मैं तो आपसे यह चाहूँगा कि भारतीयोंके सब वर्गोंकी ओरसे ऐसे व्यक्तियोंका उचित स्वागत किया जाये; किन्तु यह तभी हो सकता है जब उसमें कोई साम्प्रदायिक तत्त्व न हो; और, उसके बाद जो आर्यसमाजके उपदेशोंमें दिलचस्पी लेते हों वे उसे विशेष रूपसे देख लें।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

श्री बी० ए० मेघराज व ए० मूडले
पो० ऑ० बॉक्स १८२
डर्बन

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ७३०

१. प्रो० परमानन्दके लिए; देखिए पिछला शीर्षक।

३१. पत्र : कैप्टन फॉउलको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई २१, १९०५

कैप्टन फॉउल
पो० ऑ० बॉक्स ११९९
जोहानिसबर्ग

प्रिय कैप्टन फॉउल,

देखता हूँ कि खुफिया पुलिसके लोग अभीतक बिना अनुमतिपत्रवाले भारतीयोकी खोजमें लगे हुए हैं। अपनी खोजमें उन्होंने १६ सालकी उम्रके लड़कोंकी भी जाँच की है। वे उपनिवेशमें आपके आश्वासनपर रह रहे हैं — विशेषतः वह एक लड़का जिसके बारेमे मैंने आपको लिखा है। महोदय, वे देखनेमे १६ सालसे कमके हैं। या, जब वे यहाँ आये थे तब तो अवश्य ही इसी उम्रके रहे होगे। दोष इतना ही है कि उनके माता-पिता यहाँ नही है। या तो वे अनाथ हैं, और अपने स्वाभाविक अभिभावकोंकी देख-रेखमे रहते हैं, या ऐसे है, जिनका लालन-पालन उनके माता-पिताकी जगह ले सकनेवाले रिश्तेदार कर रहे हैं। इसलिए मै आशा करता हूँ कि आप खुफिया पुलिसके लोगोंको यह आज्ञा देनेकी कृपा करेंगे कि जबतक मामला तय नही होता तबतक वे इन लोगोंको न छेड़े।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ७२९

३२. श्री ब्रॉड्रिकका बजट

भारत-मन्त्रीने ब्रिटिश लोकसभामें भारतीय राजस्व-लेखेपर विचारके लिए लोकसभाको समितिका रूप देनेके प्रस्तावपर जो बजट-विषयक वक्तव्य दिया, उसमे कई विशेषताएँ हैं। यह एक शुभ लक्षण है कि हालके वर्षोमें श्री ब्रॉड्रिकने अपना वक्तव्य, सदाकी भाँति अधिवेशनके अन्तमें पेश करनेके बजाय, जब कि बेंचें खाली पड़ी होती है और भारत-मन्त्री उनके सामने भाषणका स्वाग पूरा करते हैं, प्रायः प्रथम बार, उसके मध्यमें पेश किया है। यह परिवर्तन सोच-समझकर किया गया है। श्री ब्रॉड्रिकने कहा, "जल्द विचारका लाभ होगा — उपयोगी आलोचना और अच्छा शासन।" उन्होने यह आशा भी प्रकट की कि इस उदाहरणका आगे भी अनुसरण किया जायगा, चाहे वे भविष्यमें इस उच्च पदपर रहें अथवा विरोधी पक्षकी बेंचोंपर बैठे। श्री ब्रॉड्रिकने इस अवसरपर अत्यन्त स्पष्ट रूपसे बताया कि बहु-निन्दित भारतने साम्राज्यकी कितनी सेवा की है, और जिन दोनों सेवाओंपर उन्होंने इतना जोर दिया है वे ऐसी है कि उनकी ओर दक्षिण आफ्रिकाका ध्यान जाना चाहिए और उनकी सराहना होनी चाहिए।

उन्होंने कहा :

> **१९०२ और १९०३ में भारतके चौदह करोड़ तीस लाख पौंडके व्यापारमें से छः करोड़ बीस लाख पौंडका व्यापार सीधा ब्रिटेनके साथ था। और गत वर्षके सत्रह करोड़, सैंतालीस लाख और अड़तालीस हजार पौंडके व्यापारमें से सात करोड़ सत्तर लाख पौंडका माल सीधा ब्रिटेनमें आया या ब्रिटेनसे गया था। ब्रिटेनके व्यापारमें यह मात्रा छोटी नहीं है। कुछ लोग, कई दृष्टियोंसे, इस समय, उपनिवेशोंके व्यापारकी भारतके व्यापारके साथ तुलना कर रहे हैं। इसलिए यदि हम इन अंकोंकी तुलना करें तो मैं बतला सकता हूँ कि १९०२ में भारतको ब्रिटेनसे तीन करोड़ पैंतीस लाख पौंडका माल गया था। और यह निर्यात, कैनेडा, ब्रिटिश उपनिवेशों, उत्तरी अमेरिका और आस्ट्रेलियाको किये गये कुल निर्यातके बराबर था। गत वर्ष भारतको किये गये निर्यातका परिमाण बढ़कर चार करोड़ पौंड हो गया था, और वह, इस देशसे आस्ट्रेलिया, कैनेडा और केप उपनिवेशको किये गये कुल निर्यातके बराबर था।**

श्री ब्रॉड्रिकको इस सबका स्वाभाविक परिणाम निकालनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। इसलिए उन्होंने आगे कहा :

> **मुझे विश्वास है कि जब मैं यह कहूँ कि ब्रिटेनके साथ भारतका व्यापार बढ़तीपर है, तो मुझे आशा है, इस सभाका प्रत्येक सदस्य मेरा समर्थन करेगा। भारतके व्यापारमें ब्रिटेनका और ब्रिटेनके व्यापारमें भारतका भाग इतना अधिक है कि साम्राज्यके अन्तर्गत व्यापारके सम्बन्धमें जो भी विवाद हों उन सबमें हम भारतको प्रथम स्थान देनेका दावा कर सकते हैं।**

श्री ब्रॉड्रिकने जो दूसरा वक्तव्य दिया वह साम्राज्यकी रक्षाके विषयमें था। भारत पचहत्तर हजार ब्रिटिश सैनिकोंके प्रशिक्षणका और एक लाख चालीस हजार ब्रिटिश भारतीय सनिकोंकी भर्तीका स्थान है, और साम्राज्य इन सब सैनिकोंका किसी भी संकटके समय उपयोग कर सकता है। इन सबका खर्च भारत उठाता है, जो उसकी आठ करोड़ बीस लाख पौंडकी आमदनीमें दो करोड़ पाँच लाख पौंड बैठता है। लॉर्ड रॉबर्ट्ससे लेकर अबतक के सब नामी सेनापतियोंने भारतीय सेनाकी कुशलताकी पुष्टि की है। सर जॉर्ज व्हाइट और उनकी सेनाने, बोअर-युद्धके समय, अपनी इस तत्परताका प्रभावशाली उदाहरण उपस्थित किया था। ये सब तथ्य अर्थ-पूर्ण हैं। दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिज्ञोंको इन सबका अध्ययन और मनन करना चाहिए। और जब वे ऐसा कर चुकें तब हम उन्हें आदरपूर्वक सलाह देंगे कि वे अपने-आपसे यह प्रश्न करके देखें कि क्या विशुद्ध स्वार्थकी दृष्टिसे भी, भारतके निवासियोंके साथ, निरन्तर, बिलकुल ऐसे विदेशियोंका-सा व्यवहार करना लाभप्रद होगा जो कि उनकी ओरसे किसी भी प्रकारके लिहाजके अधिकारी न हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-९-१९०५

३३. ट्रान्सवालमें एशियाई 'बाजार'

ट्रान्सवालके 'गवर्नमेंट गजट' के हालके अंकमें एक अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित किया गया है। उसकी कुछ धाराएँ ये हैं :

(१) परिषद लेफ्टिनेंट गवर्नरकी मंजूरीसे, केवल एशियाई लोगोंके लिए, बाजारों या अन्य स्थानोंको अलग कर सकती है, कायम रख सकती है और चला सकती है; लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा समय-समयपर बनाये गये नियमोंके अनुसार, उनका नियन्त्रण और निरीक्षण कर सकती है; और उनकी जमीनों या उनपर बनी इमारतों या अन्य निर्मित चीजोंको, उन शर्तोंपर एशियाइयोंको पट्टेपर दे सकती है जो समय-समयपर ऊपर कहे नियमोंके अनुसार तय की जायें।

(२) लेफ्टिनेंट गवर्नर १८८५ के कानून ३ या उसके किसी संशोधनकी धाराओंमें निर्दिष्ट किसी भी बाजारकी जगहों या अन्य स्थानोंको, नगरपालिकाकी किसी भी परिषदके नाम हस्तान्तरित कर सकता है; परन्तु ऐसा करते हुए उसके वर्तमान पट्टोंका खयाल रखा जायेगा; और ऐसे किसी भी हस्तान्तरणपर हस्तान्तरणके स्टाम्पका कर या रजिस्ट्रीका खर्च या कोई अन्य खर्च नहीं लगेगा; और इस प्रकार हस्तान्तरित किया गया कोई भी बाजार या स्थान, इस खण्डके उपखण्ड (१) के अन्तर्गत पृथक्कृत बाजार या क्षेत्र माना जायेगा।

(३) इस अध्यादेशके खण्ड २ के नियमोंके अनुसार आवश्यक परिवर्तनोंके साथ, किसी परिषदको अधिकार है कि वह चाहे तो ऐसे बाजारों और स्थानोंको बन्द कर दे और इनके लिए दूसरी उपयुक्त जमीनका बन्दोबस्त करे।

(४) इस खण्डका "परिषद" शब्द किसी भी नगरपालिकाकी परिषदका सूचक होगा, फिर वह नगरपालिका चाहे १९०३ के नगर-निगम अध्यादेशके अन्तर्गत बनी हो, चाहे १९०४ के संशोधित नगर-निगम अध्यादेश या किसी अन्य विशेष कानूनके अन्तर्गत।

जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघने, 'बाजारों' का नियन्त्रण नगरपालिकाओंको हस्तान्तरित कर देनेके विचारका अविलम्ब प्रतिवाद[1] किया है। हमारी सम्मतिमें, ऐसे हस्तान्तरणके विरोधमें की गई आपत्तियाँ अकाट्य हैं। सारा ही एशियाई प्रश्न अभी विचाराधीन है, और उसके सम्बन्धमें साम्राज्य सरकार और स्थानीय सरकारके बीच पत्र-व्यवहार हो रहा है। १८८५ का कानून ३, जैसा दोनों पक्षोंने कहा है, अस्थायी है और यथाशीघ्र हटा दिया जायेगा। इसलिए कोई भी ऐसा विधान, जिसका आधार यह कानून हो और जिससे पाबन्दियाँ बढ़ती हों, उस उदार नीतिके अनुरूप नहीं हो सकता जिसका पालन करनेके लिए स्थानीय सरकारें बाध्य हैं। यदि यह बात नहीं है तो श्री लिटिलटनके इस वक्तव्यका क्या अर्थ होगा कि कमसे-कम युद्धसे पहलेकी अवस्थाएँ जैसीकी तैसी रहने दी जायेंगी। इसके अतिरिक्त रंगके प्रश्नपर ट्रान्सवालकी नगरपालिकाओं और स्थानिक निकायोंके पूर्वग्रह बड़े प्रबल हैं। वे इसका ढोल पीटनेमें संकोच

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ १२।

नहीं करते; और कुछ नगरपालिकाएँ और निकाय, संभव होता है तो, इसके लिए हिंसा तक करनेको तैयार रहते हैं। इन परिस्थितियोंमें, जब कि भावी स्थिति अनिश्चित है, ट्रान्सवाल सरकार द्वारा नये कानूनका बनाया जाना अजीव मालूम होता है, मानो १८८५ का कानून ३, कानूनकी किताबमें से कभी हटाया ही नहीं जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-७-१९०५

३४. एक गुप्त बैठक

हमारे सहयोगी 'ट्रान्सवाल लीडर' ने अपने प्रिटोरियाके संवाददाताका भेजा हुआ इस आशयका एक संवाद प्रकाशित किया है कि परमश्रेष्ठ सर आर्थर लालीने एशियाई-विरोधी सम्मेलन (एंटी एशियाटिक कनवेंशन) के नेताओंको निजी तौरपर मुलाकात दी। मुलाकातियोंमें श्री लवडे और श्री बोर्क भी शामिल थे। संवाददाताने यह भी लिखा है कि मुलाकात देर तक चली और मुलाकाती सर आर्थरके पाससे पूरे सन्तोषके साथ लौटे। मुलाकातमें दरअसल क्या हुआ, इसे प्रकट नहीं किया गया। लॉर्ड सेल्बोर्नने बोअर नेताओं और 'जिम्मेदार संघ' (रिस्पॉन्सिबल असोसिएशन) के सदस्योंसे मिलनेपर दूसरा ही रुख अपनाया। उन्होंने पत्र-प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित किया और कार्रवाई प्रकाशित कराई। तो फिर, एशियाई मामलोंको इतना लुकाने-छिपानेकी क्या जरूरत थी? यदि मुलाकाती यह चाहते थे, तो क्या इसका मतलब यह है कि वे अपने कृत्यों और वक्तव्योंपर रोशनी पड़ने देनेसे डरते थे? और यदि सर आर्थरने गोपनीयता पसन्द की थी तो हम अदबके साथ जानना चाहते हैं कि ऐसा करनेमें उनका मंशा क्या था? उन्हें क्या यह आशंका थी कि श्री लवडे बिलकुल अंधाधुंध वक्तव्य देंगे और इसलिए उन्हें अपनी शर्मपर परदा डालनेकी फिक्र थी? ब्रिटिश भारतीय चाहते हैं कि उनके विरुद्ध या पक्षमें जो कुछ भी कहा जाये वह पूरी तरह खुल्लमखुल्ला कहा जाये। उन्हें किसी बातका डर नहीं है, वे किसी बातको न बढ़ाकर कहना चाहते हैं न घटाकर, क्योंकि उनका पक्ष सर्वथा न्यायपूर्ण है। इसलिए हम आशा करें कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंको कमसे-कम उन बातोंपर विचार करनेका अवसर अब भी दिया जायेगा जो उनकी पीठ पीछे, मुलाकातियोंने परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरसे कही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-७-१९०५

३५. क्रूगर्संडॉर्पके भारतीय

क्रूगर्संडॉर्पमें भारतीयोंके बारेमे सभा[1] होनेपर नगरपरिषदके नाम वहाँके डॉक्टरकी रिपोर्ट आई है। उन्होने उसमे लिखा है कि भारतीयोके मकान अधिकतर गन्दे पाये जाते है, वे चाहे जहाँ थूक देते हैं, उनके पाखाने बड़े गन्दे होते है, पाखानोंकी जमीनपर पानी भरा रहता है जो बिलकुल नही सूखता है, वे दूकानपर ही बैठते और सोते है, इत्यादि। हम जानते हैं कि इसका बहुत-सा हिस्सा झूठ है और क्रूगर्संडॉर्पके भारतीयोंका कर्तव्य है कि वे इसके खिलाफ रिपोर्ट प्राप्त करे। फिर भी हमें ऊपरके आक्षेप एक हद तक स्वीकार करने पडेगे। इस बातसे कोई इनकार नही कर सकता कि हम लोग चाहे जहाँ थूक देते हैं और अपने पाखाने गन्दे रखते हैं। हम लोग पाखानोंकी सफाईकी ओरसे आम तौरपर उदासीन रहते हैं। हम यह अनुभव करते है कि हमे उदासीनता छोड़ देनी चाहिए। पाखानोमे से अनेक रोग लगते हैं, यह बात साबित हो सकती है। पाखाने साफ रखना बहुत आसान बात है। पाखानेके बाद हर बार बाल्टीमें सूखी मिट्टी या राख डाली जाये और तख्तोको हमेशा जन्तुनाशक पानीसे धोकर साफ किया जाये। यदि हमेशा ऐसा किया जाये तो इसमे समय खर्च नही होता और बहुत घिन करनेका कारण भी नही रह जाता।

[हमे थूकनेके बारेमें भी विचार करना चाहिए। घरमे अथवा दूकानमें चाहे जहाँ थूकनेके बजाय रूमालमे अथवा थूकदानमे थूकनेकी आदत डालना हर तरह जरूरी है।]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–७–१९०५

३६. ट्रान्सवालमें भारतीय होटल

ट्रान्सवालमे भारतीय होटलोंके बारेमें आजतक कोई कानून नही बना है। काफिरोके भोजन-गृहों या गोरोके होटलोके परवाने लेने पड़ते हैं। ट्रान्सवालमे चीनियोकी संख्या बढ़ जानेसे चीनी होटल खुलने लगे। इनके लिए परवानेकी कोई जरूरत नही थी। डरके मारे चीनियोने सरकारसे परवाने माँगे। सरकारने लिखा कि परवानोंकी जरूरत नही है। चीनियोने यह समझा कि परवानेके बिना होटल खुल ही नही सकता, इस कारण उन्होंने सरकारको अर्जी भेजी कि परवानेका कानून बनना चाहिए। कहावत है, अपनी करनी, पार उतरनी। तदनुसार, अब इस सम्बन्धमे 'गवर्नमेंट गजट'मे विधेयक प्रकाशित कर दिया गया है। अब होटलोके भारतीय मालिकोको भी परवाने लेने पड़ेंगे। इस विधेयकका विरोध भी नही किया जा सकता। इसलिए ट्रान्सवालमे जो लोग भारतीय भोजनालय चलाते हैं उनको बहुत सावधानीसे चलना होगा। हमारा खयाल यह है कि मकान बहुत स्वच्छ होंगे तभी परवाने मिलेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–७–१९०५

1. जून २३, १९०५ को।

३७. जोज़ेफ़ मैज़िनी

जानने योग्य कार्यकलाप

इटली एक नवोदित राष्ट्र है। सन् १८९० से पहले वह बहुतसे छोटे-छोटे भागोंमें बँटा था और उनमें से प्रत्येकका शासक एक सरदार था। जैसा इन दिनों भारत या काठियावाड़ है वैसा सन् १८७० से पहले इटली था। लोग एक भाषा बोलते थे। एक स्वभावके थे, फिर भी सबके-सब छोटी-छोटी रियासतोंके अधीन थे। आज इटली यूरोपका एक स्वतन्त्र देश है और इटलीके लोगोंकी एक पृथक् जातीयता कही जाती है। यह कहा जा सकता है कि यह सब एक ही पुरुषके हाथसे हुआ है। उस पुरुषका नाम था जोजेफ मैजिनी।

मैज़िनी जेनोआमें १८०५ के जून महीनेकी २२ तारीखको जन्मा था। वह ऐसा सच्चरित्र, भला और स्वदेशाभिमानी पुरुष था कि उसके जन्मसे सौ वर्ष बाद उसकी जन्म-शताब्दी मनानेका आन्दोलन यूरोप-भरमें किया जा रहा था और वह अब भी जारी है; क्योंकि, यद्यपि उसने इटलीकी सेवा करनेमें अपना सारा जीवन बिताया, फिर भी उसका मन इतना उदार था कि वह हर देशका निवासी गिना जा सकता है। प्रत्येक देशके लोग उन्नत हों और मिलकर रहे, यह उसकी सतत सीख थी।

मैज़िनीकी प्रखर प्रतिभा १३ वर्षकी आयुमें ही दिखाई देने लगी थी। उसने बड़ी विद्वत्ता प्रदर्शित की, किन्तु फिर भी अपने देशके लिए उसके दिलमें जो आग थी उसके कारण उसने अन्य पुस्तकें छोड़कर कानूनका अध्ययन शुरू किया और अपने कानूनी ज्ञानका उपयोग गरीबोंको मुफ्त सहायता देनेमें करने लगा। फिर वह उस गुप्त संगठनमें शामिल हो गया जिसका उद्देश्य इटलीको संगठित करना था। उसका पता इटलीकी रियासतोंको चल गया, अतः उन्होंने उसे जेलमें भेज दिया। जेलमें भी उसने अपने देशकी मुक्तिका आयोजन जारी रखा। अन्तमें उसे इटली छोड़ना पड़ा। वह मार्सेल्ज़में जा रहा। रियासतोंने अपना प्रभाव काममें लाकर उसको वहाँसे भी निर्वासित करा दिया। इस प्रकार भटकते रहनेपर भी उसने हार नहीं मानी। वह लेख लिख-लिखकर गुप्त रूपसे इटली भेजता रहा। इसका प्रभाव धीरे-धीरे लोगोंके मनपर पड़ने लगा। यह सब करते हुए उसने बहुत कष्ट सहन किये। उसे जासूसोंसे बचनेके लिए गुप्त वेशमें भ्रमण करना पड़ा था। कई बार उसकी जान भी जोखिममें पड़ जाती थी; लेकिन इसका उसे डर नहीं था।

अन्तमें वह सन् १८३७ में ब्रिटेन गया। वहाँ उसे बहुत कष्ट तो नहीं था, किन्तु गरीवी बहुत भुगतनी पड़ती थी। इंग्लैंडमें वह बहुत बड़े-बड़े व्यक्तियोंके संपर्कमें आया। उसने उनसे मदद माँगी।

सन् १८४८ में वह गैरीबाल्डीको साथ लेकर इटली गया और वहाँ स्वराज्य स्थापित किया। किन्तु षड्यन्त्रकारी लोगोंके कारण वह देरतक नहीं टिक सका और उसे दुबारा भागना पड़ा। फिर भी उसका बल नहीं टूटा। उसने ऐक्यका जो बीज बोया था, वह बना रहा। और यद्यपि वह स्वयं देशसे निर्वासित रहा फिर भी सन् १८७० में इटली एक राज्य बन गया। उसका राजा विक्टर इमेन्यूयल हुआ। इस प्रकार उसे अपने देशके संगठित होनेसे संतोष मिला। फिर भी उसे स्वदेशमें लौटनेकी इजाजत नही थी। इसलिए वह छद्म वेषमें इटली जाया करता

था। एक बार उसे पुलिस पकड़नेके लिए आई। तब उसने स्वयं दरबानका वेश बनाकर दरवाजा खोला और इस प्रकार पुलिसको चकमा दिया।

यह महान पुरुष सन १८७३ के मार्च महीनेमें चल बसा। इस समय उसके शत्रु भी मित्र हो गये थे। लोग उसकी सच्ची खूबियोंको पहचान गये थे। उसकी अर्थीके साथ अस्सी हजार लोग गये थे। जेनोआमें वह सबसे ऊँची जगहपर दफन किया गया। इटली और यूरोपके शेष देश आज इस पुरुषकी पूजा करते हैं। इटलीके महापुरुषोंमें उसकी गिनती है। वह सदा स्वार्थ-रहित, अहंकार-रहित, अत्यन्त पवित्र और धर्मनिष्ठ पुरुष रहा। गरीबी उसका आभूषण थी। वह पराये दुःखको अपना दुःख मानता था। संसारमें ऐसे उदाहरण विरले ही दीख पड़ते हैं जहाँ एक ही मनुष्यने अपने मनोबलसे और अपनी उत्कट भक्तिसे, अपने देशका अपने जीवन-कालमें उद्धार किया हो। ऐसा पुरुष तो मैजिनीकी माँने ही उत्पन्न किया था।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–७–१९०५

३८. ट्रान्सवाल आनेवाले भारतीयोंको महत्त्वपूर्ण सूचना[1]

ट्रान्सवालमें आजकल अनुमतिपत्रोंके बारेमें भारतीयोंपर सख्ती की जा रही है। बहुत लोग, जो जाली अनुमतिपत्रोंके बलपर यहाँ ठहरे हुए थे, निर्वासित कर दिये गये हैं। अनुमतिपत्रोंपर जिनके अँगूठेके निशान नहीं थे ऐसे कुछ लोगोंको छः-छः सप्ताहकी कैदकी सजा दी गई है। अभी कुछ अन्य लोगोंको परेशानी होनेकी सम्भावना है। यह भी खयाल है कि अनुमतिपत्र-अधिकारी विभिन्न गाँवोंमें जाँच करनेके लिए जायेंगे। इसलिए जिनके पास जाली अनुमतिपत्र हों उनका तुरन्त ट्रान्सवाल छोड़कर चले जाना जरूरी है। जाली अनुमतिपत्रका उपयोग बिलकुल न किया जाये, नहीं तो जेल भुगतनेकी नौबत आयेगी।

आजतक १६ वर्षसे कम आयुके लड़कों और औरतोंको अनुमतिपत्रोंके बिना जाने देते थे; लेकिन अनुमतिपत्रोंकी जाँच शुरू होनेके बाद सीमापर बहुत सख्ती की जा रही है। अब १६ वर्षसे कम आयुका लड़का अपने पिताके साथ न हो अथवा स्त्री अपने पतिके साथ न हो तो उसको अनुमतिपत्र न होनेपर रोक लिया जाता है। एक स्त्री अपने पतिके बिना ट्रान्स-वाल जा रही थी। वह फोक्सरस्टमें उतार दी गई। इससे ट्रान्सवालमें भारतीयोंको नीचे लिखी बातें ध्यानमें रखनी चाहिए।

(१) जाली अनुमतिपत्र लेकर यहाँ प्रवेश न करें।
(२) स्त्रियाँ अनुमतिपत्र न होनेपर अपने पतिके बिना प्रवेश न करें।
(३) १६ वर्षसे कम आयुके लड़के भी अपने पिताके साथ ही अनुमतिपत्रके बिना प्रविष्ट हो सकते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–७–१९०५

१. यह "हमारे जोहानिसबर्ग संवाददाता द्वारा प्रेषित," रूपमें प्रकाशित हुआ था।

३९. पत्र: बीमा कम्पनीके एजेंटको[1]

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई २५, १९०५

सेवामें
एजेंट
न्यूयॉर्क म्यूचुअल लाइफ इन्श्योरेंस सोसायटी
जोबर्ट स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग

प्रिय महोदय,

आपको याद होगा कि श्री आनन्दलाल अमृतलाल गांधी[2] और श्री अभयचन्द अमृतलाल गांधीका[3] मेरी मार्फत बीमा हुआ था। उनकी पालिसियोंका नं० क्रमश: ३३६९००३ और ३३६९००४ है। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ दिनोंसे इन पालिसियोंकी किश्तें नहीं दी गई हैं। क्या आप कृपया मुझे यह बता सकेंगे कि इन बीमा पालिसियोंको फिरसे जारी करना सम्भव है या नहीं? और यदि सम्भव है तो किन शर्तोंपर? यदि बीमा करानेवाला सज्जन उन्हें फिरसे जारी न कराना चाहे तो जो किश्तें वे दे चुके हैं, उनमें से उन्हें कुछ रकम वापस मिल सकती है या नहीं?

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ७७१

४०. क्रूगर्सडॉर्पमें भारतीय

क्रूगर्सडॉर्पकी नगर-परिषदने सरकारको अर्जी भेजी है कि भारतीयोंको अनिवार्य रूपसे बस्तियोंमें भेजनेका कानून बनाया जाना चाहिए। ट्रान्सवाल सरकारने उत्तर दिया है कि, फिलहाल कुछ नहीं किया जा सकता, क्योंकि ब्रिटिश सरकारके साथ इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार हो रहा है। इससे मालूम होता है कि श्री लिटिलटन और सर आर्थर लालीके बीच विवाद अभी चल ही रहा है। सर आर्थरकी यह माँग है कि केवल भारतीयोंपर ही लागू होनेवाले कानून बनाये जाने चाहिए। परिणामका पता आगामी वर्षसे पहले लगनेकी सम्भावना नहीं है। इस बीच हम उम्मीद करते हैं कि क्रूगर्सडॉर्पके भारतीय अपने मकान साफ-सुथरे रखेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-७-१९०५

१. गांधीजीने अगस्त ८, १९०५ को इसी तरहका एक पत्र बम्बईके एजेंटको लिखा था। सम्भवत: वह कम्पनीके जोहानिसबर्ग-कार्यालयकी सूचनापर लिखा गया होगा।
२-३. गांधीजीके चचेरे भाई अमृतलाल गांधीके पुत्र और तुलसीदास गांधीके पौत्र।

४१. ट्रान्सवालमें अनुमतिपत्र

हम 'गवर्नमेंट गजट'से लेकर यह छाप चुके हैं कि ट्रान्सवालमें कुछ अनुमतिपत्र रद कर दिये गये हैं[1]। कुछ लोगोंने इसका अर्थ यह लगाया है कि बताई हुई संख्याओंके सच्चे अनुमतिपत्रोंके मालिकोंको भी भागना पड़ेगा और उनके अनुमतिपत्र अवैध हो गये हैं। यह विचार भ्रान्तिपूर्ण है। जिनके अनुमतिपत्र वैध है और जिनके अँगूठेके निशान उनपर लगे हुए हैं उनको बिलकुल नहीं घबराना चाहिए। 'गजट'में नाम प्रकाशित होनेपर भी उनके अनुमतिपत्र रद नहीं होते हैं। यही बात रजिस्टरोंपर भी लागू होती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-७-१९०५

४२. बाल्टिकके बेड़ेका रहस्य

बाल्टिक बेड़ेकी हारकी पूरी कहानीपर प्रकाश डालनेवाला रोजदीस्तवेन्स्कीका[2] जारके नाम प्रेषित पत्र सचमुच दयाजनक है। यद्यपि वह पत्र एक हारे हुए सेनापतिने लिखा है, फिर भी कोई यह न मानेगा कि उसमे बताये गये कारण उन्होंने अपनी हारके स्पष्टीकरणके लिए बहानेके रूपमें पेश किये हैं। जो गुप्त तथ्य अब प्रकट हुए हैं उनसे यह स्पष्टत: सिद्ध हो जाता है कि इस बेड़ेकी जो भीषण पराजय हुई वह अवश्यम्भावी थी। संसारके चतुरसे-चतुर सामुद्रिक युद्ध-विशारद कहते थे कि यह बेड़ा जापानियोंकी पूरी-पूरी खबर लेगा। ऐसा अनुमान लोग इसलिए लगाते थे कि इस बेडेके युद्धपोत अतिविशाल, शस्त्रास्त्रोसे बहुत अच्छी तरह सज्जित और तेजीसे चलनेवाले थे। उनमे नयेसे-नये ढगकी बढ़िया तोपे लगी थी और उनके सेनापति बड़े दक्ष माने जाते थे। लेकिन जैसा कि जल सेनाध्यक्ष रोजदीस्तवेन्स्कीने लिखा है, उस बेड़ेकी ऐसी महत्ता केवल कागजी ही थी। उन्होंने जारको पत्रमे लिखा है कि शासन-व्यवस्थाकी खराबीके कारण युद्ध-पोतोंका निर्माण लज्जाजनक ढंगसे किया गया था। यही नही, उनमें हथियार और बख्तर आदि लगानेकी भी बडी कमियाँ थी। तोपे ठीक तरह गोले नही फेंक पाती थी, कोयलाघरमे पूरा कोयला नही भरा जा सकता था। उनकी तेज चालका वर्णन झूठा किया गया था, उनके एंजिन सदा ऐसी आवाज करते रहते थे मानो उनका सारा ढाँचा ढीला हो गया हो, दो-तिहाई नाविक निकम्मे थे; तोपचियोंको अपने कर्तव्योंका पता नही था और सबसे खराब बात तो यह थी कि माडागास्करसे आगे चलकर सब लोग विद्रोही हो गये थे। इस प्रकारका बेड़ा युद्ध करे तो परिणाम उसकी हारके सिवाय अन्य कुछ नही हो सकता। फार्मोसा छोड़नेके बाद क्या-क्या हुआ इसका यथार्थ वर्णन उस पत्रमें दिया गया है। वह अपने बेड़ेकी इस स्थितिको पहलेसे ही जानता था और ऐसी स्थितिमें उसने युद्धका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर जो बहादुरी बताई उससे उसकी राज्यभक्ति ही प्रकट होती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-७-१९०५

१. इनकी सूची ८ और १५ जुलाई, १९०५ के **इंडियन ओपिनियन**में दी गई थी।

२. बाल्टिक नौसेनाध्यक्ष रिअर एडमिरल रोजदीस्तवेन्स्की।

४३. नेटालके गिरमिटिया भारतीय

श्री जेम्स ए० पॉलकिंगहॉर्नने गत ३१ दिसम्बरको समाप्त होनेवाला अपना वार्षिक विवरण प्रकाशित किया है। जैसा कि एक सहयोगी लिखता है, यह विवरण देरसे प्रकाशित हुआ है। नेटालमें अधिकांश सरकारी विवरण इसी तरह प्रकाशित होते हैं। इसमें सन्देह नही कि इसके परिणामस्वरूप उनमें वह दिलचस्पी नही ली जाती जो उनके तात्कालिक प्रकाशनपर ली जाती। वर्तमान विवरण फिरसे गिरमिटकी शर्त लगानेपर और व्यक्ति-करके बारेमें प्रवासी अधिनियमके अमलपर यथेष्ट प्रकाश डालता है। अतः वह साधारणसे अधिक दिलचस्पीकी चीज है। भारतीय गिरमिटिया आबादीकी अबतक दी गई संख्याकी अपेक्षा यह अधिक सही संख्या भी देता है। संरक्षक द्वारा दी गई जानकारी 'आँखे खोलनेवाली' है। गत तीन वर्षोंमें भारतीय आबादी बहुत काफी बढ़ी है। १८७६ से १८९६ के बीचमें यह ३१,७१२ थी, १९०२ में यह, ७८,००४ थी और १९०४ के अन्तमें यह ८७,९८० हो गई। इस तरह दो वर्षमें लगभग १०,००० की वृद्धि हुई। और तो भी संरक्षकका अन्यत्र कहना है कि १९०२ मे १९,००० गिरमिटियोंके लिए प्रार्थनापत्र दिये गये हैं। वे इस माँगकी पूर्ति नहीं कर सके हैं। इस प्रकारके मजदूरोंकी माँग इतनी बड़ी है कि नये प्रार्थनापत्रोंको सर्वथा अस्वीकार कर देना आवश्यक हो गया है। इस बड़ी वृद्धिका कारण स्पष्ट है। इस श्रेणीके मजदूर बहुत लोकप्रिय हैं और उपनिवेशमें उनकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। जो लोग आते हैं वे बड़ा संतोष प्रदान करते हैं और हजारों उपनिवेशियोंकी सुखद जीविका भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंके सतत प्रवाहपर बहुत अंशोंमें निर्भर करती है। इससे जो निष्कर्ष निकलता है वह भी स्पष्ट है। भारतीयोंके अवांछनीय नागरिक होनेके बारेमें यहाँ जो हल्ला है वह अधिकांश रूपसे झूठा अथवा स्वार्थभरा है। ऊपर दिये गये आँकड़ोंसे जो निष्कर्ष निकलता है उसका आश्चर्यजनक समर्थन हमें परमश्रेष्ठ नेटालके गवर्नरके हाल ही के भाषणमें मिलता है। कृषि प्रदर्शनीके उद्घाटनके समय उन्होंने कहा था कि नेटालकी तटीय भूमिके विकासके लिए भारतीय कृषक अनिवार्य हैं।

संरक्षक महोदय व्यक्ति-कर और फिरसे गिरमिटमें प्रवेश-संबंधी कानूनके अमलसे बहुत अधिक असन्तुष्ट हैं। वे कहते हैं कि इस कानूनसे लोग बहुत अधिक बच निकलते हैं और जिन भारतीयोंकी गिरमिटकी अवधि समाप्त हो जाती है उनको भारत वापस भेजनेमें यह कानून असफल रहा है। जो लोग यहाँ रह गये हैं उनमें से बहुतेरे व्यक्ति-करसे बचनेमें सफल हो गये हैं। गत वर्ष ८८८ पुरुषों और ३४५ स्त्रियोंने नये कानूनके अधीन गिरमिटकी अवधि समाप्त की। इस संख्यामे से केवल १३७ पुरुषों और ३२ स्त्रियोंने पुनः गिरमिटमें आनेकी अर्जी दी। २०१ पुरुष और ५८ स्त्रियाँ भारत लौट गये। ३७५ पुरुषों और १४६ स्त्रियोंने कर चुकाया और यह लेखा तैयार करते समय १७० पुरुषों और १०५ स्त्रियोंके बारेमें कुछ स्थिर नहीं किया जा सका। इसपर आश्चर्य करनेकी बात नही है। व्यक्ति-कर राजस्व बढ़ानेका कोई सन्तोषजनक तरीका नही है। उपनिवेशमें बसनेमें इसके कारण रुकावट नहीं आई। अधिनियम बनानेवालोंने किसी ऐसे परिणामकी आशंका नही की थी। गिरमिटिया भारतीयोंको इससे खीज उत्पन्न होती है। यह उनसे अनुचित ढंगसे धन वसूल करनेका जरिया है और नेटालके सुन्दर नामपर एक धब्बा लगाता है। और इससे भी अधिक दुःखकी बात यह है कि यह कर उन

लोगोंपर लगाया गया है, जिनकी सेवाएँ, जैसा कि दिखाया जा चुका है, उपनिवेशकी भलाईके लिए अनिवार्य मानी गई है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-८-१९०५

४४. जापान कैसे जीता?

न्यूयॉर्कमें संवाददाताओंने बैरन कोमुरासे प्रश्न किया कि जापानकी जीतके कारण क्या हैं? बैरन कोमुराने जो उत्तर दिया वह सदाके लिए मनमें अंकित कर लेने योग्य है। उन्होंने कहा कि जापानकी माँग न्यायोचित है, यह एक कारण है। दूसरा कारण यह है कि जापानमें ऐक्य है। अधिकारियों और लोगोंमें भ्रष्टाचार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना कर्तव्य पूरा करता है। जापानी आलसी अथवा काहिल नहीं हैं और अत्यन्त सादगीसे रहते हैं। जापानी सादगीसे रहनेके कारण रूसियोंसे टक्कर ले सके हैं। थोड़े कपड़े और आहारमें थोड़ी चीजोंकी आवश्यकता इत्यादि कारणोंसे जापानी सैनिकोंकी खाद्य-सामग्री आदि कम गाड़ियोंमें ढोई जा सकती हैं। परिणामस्वरूप जापानियोंको बहुतसे सैनिकोंको दूर तक ले जानेमें कम असुविधा रहती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-८-१९०५

४५. पत्र : दादा उस्मानको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ५, १९०५

श्री सेठ दादा उस्मान,

पत्र मिला। श्री वाइलीको हकीकत भेजी है। उसकी नकल आपको भी भेजता हूँ। आपके परवानेके बारेमें आपका चेक मिलनेके बाद मैंने आजतक कोई फीस नामे नहीं लिखी है। मुझे लिखनी चाहिए कि नहीं, जवाब लिखें।

विज्ञापन इकट्ठे किये, यह ठीक किया। चेक लिये या नहीं?

दफ्तरसे श्री लैविस्टरका मशविरा वगैरह कागजात भेजें।

मो॰ क॰ गांधीके सलाम

श्री दादा उस्मान
बॉक्स ८८
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ८७१

४६. पत्र : कुमारी बिसिक्सको[1]

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ५, १९०५

प्रिय कुमारी बिसिक्स,

मुझे आपकी परेशानियोंके लिए बहुत अफसोस है। मुझे लगता है कि आपने जिन चीजोंका उल्लेख किया है वे वापस नही ली जा सकेंगी, क्योंकि न्यासीसे मुझे मालूम हुआ है कि वे बिक्रीमें शामिल कर ली गई हैं। चालू धन्धेके रूपमें बिक्रीसे केवल २१० पौंड वसूल हुए हैं। मुझे पता चला है कि कारोबार ब्राउन बन्धुओंने खरीदा है।

मैंने भगिनी हीलिएलसे कहा था कि शायद मैं सोमवारको आपके पास साइकिलसे चला आऊँ; किन्तु मुझे दुःख है कि मैं नहीं आ सकूँगा।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

कुमारी बिसिक्स
मारफत बॉक्स ४२०७

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ८७२

४७. पत्र : उमर हाजी आमदको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ५, १९०५

श्री सेठ उमर हाजी आमद,

आपका पत्र मिला। मैरित्सबर्गमें विज्ञापन इकट्ठे किये, यह जानकर खुशी हुई।

आप फीनिक्स गये होंगे। नियमित रूपसे जाते रहिए। नींदमें खलल न पहुँचे, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।

मो० क० गांधीके सलाम

श्री उमर हाजी आमद
बॉक्स [४४१]
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ८७४

१. कुमारी एडा बिसिक्स एक उद्योगी थियोसॉफिस्ट थीं। उन्होंने एक छोटा निरामिष उपाहार-गृह खोला और बादमें उसका विस्तार करनेका निर्णय किया। वह सहायताके लिए गांधीजीके पास आईं। उन्होंने अपने एक मुवक्किलके एक हजार पौंड उसकी मंजूरीसे कुमारी बिसिक्सको दे दिये; परन्तु वे उन्हें कभी वापस नहीं मिले। उसकी क्षतिपूर्ति उन्होंने स्वयं की। देखिए आत्मकथा भाग ४, अध्याय ६।

४८. पत्र: अब्दुल हक व कैखुसरूको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ५, १९०५

भाई अब्दुल हक व कैखुसरू,

आपका पत्र मिला। रुस्तमजी सेठका पत्र वापस भेजता हूँ। मैं उन्हें लिखूँगा। भाड़ेके बारेमें जो अर्थ आप निकालते है सो निकल सकता है। किन्तु उसकी चिन्ता किये बिना घर खाली न रहे, इसपर पर्याप्त ध्यान रखा जाये, इतना काफी है। आजम मूसा हुसेनके मुख्त्यार-नामेका अभी उपयोग नही हो रहा है। आपने पत्रपर पूरी टिकटें नही लगाई थी।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न: १

पेढ़ी जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
११० फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ८७६

४९. पत्र: मुख्य अनुमतिपत्र-सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ८, १९०५

सेवामें
मुख्य अनुमतिपत्र-सचिव
पो० ऑ० बॉक्स ११९९
जोहानिसबर्ग

महोदय,

विषय: अब्दुल कादिरके[1] अनुमतिपत्रकी नकल

पिछले महीनेकी १४ तारीखके आपके पत्र, संख्या ६५० से मुझे सूचना मिली कि अब आपने मेरे मुवक्किलके अँगूठेके निशानकी जाँच कर ली है और उसके अनुमतिपत्र तथा पंजीयनका पता लगा लिया है।

मैं निवेदन करता हूँ कि ऐसे मामलोंमें एक दूसरा अनुमतिपत्र अथवा किसी प्रकारका प्रमाणपत्र जारी करना आवश्यक है, ताकि पंजीकृत निवासी बिना परेशानीके वापस आ सके। मेरा मुवक्किल भारत जानेवाला है और इसलिए यदि आप उसे प्रमाणपत्र दे दे तो मैं बहुत

१. नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष, १८९९–१९०१।

कृतज्ञ हूँगा। इसमें जालसाजीका प्रश्न नहीं हो सकता, क्योंकि जो प्रमाणपत्र आप जारी करेंगे उसपर अँगूठेका निशान रहनेके कारण किसी औरके द्वारा उसका उपयोग नहीं किया जा सकेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ८८९

५०. पत्र: अब्दुल हकको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ८, १९०५

भाई अब्दुल हक,

पारसी कावसजी लिखते हैं कि उन्हें ५० पौंड दिये जायें तो आप उनकी ओरसे एक वर्षकी जमानत दे देंगे। रुस्तम सेठ क्या कह गये हैं, यह आपको मालूम होगा। अपने खाते लिखकर उतनी रकम पारसी कावसजीको देना आपको उचित दिखे, तो लिखिए। तब मैं उमर सेठको उतने पौंडका चेक काटनेको लिखूँगा।

आजकल किराया हर माह कितना है, लिखिए।

मो० क० गांधीके सलाम

श्री अब्दुल हक
मारफत पेढ़ी जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
११० फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ८९०

५१. पत्र : तैयब हाजी खान मुहम्मदको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ८, १९०५

सेठ श्री तैयब हाजी खान मुहम्मद,

आपके दावेके[1] बारेमें साथकी नकलके मुताबिक जवाब दिया है। मुझे दुःख है। अब लॉर्ड सेल्बोर्नको अधिक लिखनेकी जरूरत है, ऐसा मैं नहीं मानता। मुकदमा विलायतमें लड़ना होगा। या फिर तैयब सेठ आयें तो यहाँ लड़ सकते हैं।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न :

पेढ़ी तयब हाजी खान मुहम्मद ऐंड कं०
बॉक्स ३५७
प्रिटोरिया

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९००

५२. पत्र : हाजी हबीबको[2]

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ९, १९०५

श्री सेठ हाजी हबीब,

करोडियाके बारेमें आपका पत्र मिला। मैंने नोटिस भेज दिया है।

मो० क० गांधीके सलाम

[पुनश्च]

मैं कल रात कामसे प्रिटोरिया गया था। सवेरे ७॥ की गाड़ीसे आनेके कारण मिल नहीं सका, इसके लिए माफी चाहता हूँ। श्री केलनबैकके[3] साथ सन्देशा भेजा है।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९०७

१. यह युद्ध-क्षतिके सम्बन्धमें था।
२. मन्त्री, ट्रान्सवाल भारतीय संघ।
३. हरमान केलेनबैक एक धनी जर्मन वास्तुकार थे। श्री खानने उनमें आध्यात्मिक वृत्ति देखी और उनका परिचय गांधीजीसे करा दिया। वे गांधीजीके मित्र बन गये और उनके साथ सादे जीवनके प्रयोगमें शरीक हो गये। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके अनाक्रमक प्रतिरोध आन्दोलनमें जेलयात्रा की। देखिए, दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रह, अध्याय २३, ३३-३५।

५३. पत्र : अब्दुल कादिरको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त १०, १९०५

प्रिय श्री अब्दुल कादिर,

मुझे अभीतक आपको लिखनेका समय नहीं मिला था। कारोबारकी बातपर आनेके पहले, श्रीमती अब्दुल कादिरने जो कचौड़ियाँ भेजीं, उनके लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहता हूँ। मैंने जो हँसी-हँसीमें माँगा था, सचमुच ही मिल गया। आप जानते हैं कि श्री उमर और श्री दादा उस्मान मेरे साथ थे। हम सबने उन्हीं कचौड़ियोंकी ब्यालू की। इसके सिवा एक दुर्घटना भी हो गई थी। एक इंजन पटरीसे उतर गया था और रातको सारे यात्रियोंको गाड़ियाँ बदलनी पड़ी थीं। आधी रातके बाद गाड़ी ३ घंटे पिछड़ गई। इसलिए जिन स्टेशनोंपर भोजन मिल सकता था उनपर भोजन नहीं दिया गया और उस परिस्थितिमें केवल मैंने ही नहीं, मेरे दूसरे रेलके साथियोंने भी — यद्यपि वे यूरोपीय थे — वे कचौड़ियाँ बहुत पसन्द कीं। वे बहुत स्वादिष्ट थीं। इस तरह जोहानिसबर्ग पहुँचनेके पहले ही टोकरी आधी हो गई। श्रीमती अब्दुल कादिरको उनकी मेहरबानीके लिए मैं फिर धन्यवाद देता हूँ।

बैंक द्वारा लिखाया गया जमानतनामा श्री अब्दुल गनीने[1] मुझे दिखा दिया है। मेरे विचारसे उसकी कोई जरूरत नही है। मेरी रायमें बैंककी जमानतपर साझेदारीके विघटनकी लिखा-पढ़ीका बिलकुल ही प्रभाव नही पड़ता। बॉडमें परिवर्तन करनेका कारण मेरी समझमें नहीं आता। लेकिन चूँकि पेढ़ी नये सिरेसे नाम चढ़ाई जानी है, इसलिए इसमें कोई नुकसान नही है। मैं आशा करता हूँ कि आप मामलेको जल्दी आगे बढ़ायेंगे। श्री मुहम्मद इब्राहीमका नाम वापस लेनेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए; क्योंकि यदि वे राजी न हों तो भी अदालतका हुक्म बिलकुल काफी होगा। मुझे मालम हुआ है कि सभी हिस्सेदारोंकी इच्छा साझेदारीके विघटनको 'गजट'में विज्ञापित करने की है। मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ। इसलिए मैं विज्ञापनका मसविदा[2] भेज रहा हूँ। यदि आप मंजूर करें, तो पाँचों हिस्सेदार उसपर दस्तखत कर सकते हैं और वह वहाँके और यहाँके दोनों 'गजटों'में तथा दोनों जगहोंके एक-एक दैनिक पत्रमें विज्ञापित किया जा सकता है। आपके लन्दनके एजेंटोंको भेजनेके लिए भी पत्रका मसविदा[3] साथमें है।

वहाँ जो बैठकें हुई उनमें आपने अत्यन्त चतुराई और शान्तिका परिचय दिया। उसे देखकर मैं हदसे ज्यादा प्रसन्न हुआ। यह मेरी हार्दिक आशा और प्रार्थना है कि दोनों धन्धे बढ़ते जायें और आप सबमें पूरा मेल-जोल बना रहे। मैं यह सलाह भी देना चाहता हूँ कि यद्यपि आगे चलकर दक्षिण आफ्रिकाका भविष्य निश्चय ही अच्छा है तो भी आप जो काम हाथमें लें, उसमें अत्यन्त सावधान रहें। हमें अभी और भी बुरे दिन देखने पड़ेंगे; जो इस सत्यको समझ

१. अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ।
२. व ३. ये उपलब्ध नहीं हैं।

लेंगे अन्तमें वे सबसे अधिक फायदेमें रहेंगे। मुझे इसमें शक नहीं है कि कारोबार बहुत अधिक करना है, किन्तु इसमें बहुत अधिक विचारशीलताकी आवश्यकता है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

श्री अब्दुल कादिर
मारफत श्री एम० ओ० कमरुद्दीन ऐंड कं०
पो० ऑ० बॉक्स १८६
डर्बन

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९१२

५४. पत्र : पर्क्स लिमिटेडको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ११, १९०५

पेढ़ी पर्क्स लि०
पो० ऑ० बॉक्स २७८९
जोहानिसबर्ग

प्रिय महोदय,

विषय : जगन्नाथ

इस मुकदमेकी सुनवाई आज सुबह हुई। दो गवाहोंने इस आशयकी गवाही दी कि १ पौंड मक्खन माँगा गया था और उसपर जैसी टिकिया श्री लैवीने मुझे दिखाई थी वैसी टिकिया निरीक्षकको दी गई; और जब पैसा दिया जा चुका तब निरीक्षकने टिकिया तोली। टिकिया तोलते समय अभियुक्तने टिकियाके ऊपरकी लिखावटकी ओर इशारा किया। यह कानूनके मुताबिक स्पष्ट ही अपराध था, किन्तु मजिस्ट्रेटने ऐसा माना कि इस मामलेमें अभियुक्त बिलकुल निरपराध है और इसलिए उसपर केवल १ पौंड जुर्माना किया गया। मैं वर्तमान परिस्थितियोंमें अधिकसे-अधिक यही कर सकता था। जान पड़ता है कि अदालतमें पिछले हफ्ते एक ऐसा ही मामला आया था। उसमें भी गवाहीसे यही जाहिर हुआ कि जो टिकिया बेची गई थी उसपर लिखावट बहुत अस्पष्ट थी; इसलिए मुझे लगता है कि जबतक ऊपर लगे हुए लेबिलपर चारों तरफकी लिखावट बहुत ज्यादा बड़ी नहीं होगी, तबतक फुटकर विक्रेताओंपर जुर्मानेकी जोखिम रहेगी और वह भी बहुत भारी जुर्मानेकी; क्योंकि वजनमें १ पौंड मक्खन माँगनेपर ग्राहकको उक्त प्रकारकी टिकिया बेचनेपर २० पौंड जुर्माना किया जा सकता है। इसलिए मैं [सोचता हूँ कि उनपर] लिखावट अधिक अच्छी होनी चाहिए अथवा अपने विक्रेताओंको यह कह दें कि वे इन टिकियोंको बेचते समय हर बार यह कहें कि वजनकी कोई गारंटी नहीं है।

मैं मुकदमेके सम्बन्धमें ३ पौंड ३ शिलिंग आपके नाम डालता हूँ।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९२२

५५. कदम-ब-कदम

रैंड अग्रगामी संघ (रैंड पायोनियर्स) को धन्यवाद है कि उसकी कार्रवाईके फलस्वरूप जोहानिसबर्गकी गिरजा-परिषद (चर्च कौन्सिल) अपने कर्त्तव्यके प्रति जागरूक हो गई है। परिषदके प्रतिनिधियोंका एक शिष्टमण्डल, ट्रान्सवालमें भूमिपर वतनी लोगोके अधिकारके सम्बन्धमें लॉर्ड सेल्बोर्नसे यह अनुरोध करनेके लिए मिला था कि वतनियोंको जो अधिकार युद्धसे पहले प्राप्त थे उनको अक्षुण्ण रखना वांछनीय है। ट्रान्सवालके महान्यायवादी यह बता चुके हैं कि ट्रान्सवालमें किस प्रकार युद्धसे पहले वतनी लोग स्वतन्त्रतापूर्वक जमीनके मालिक हो सकते थे। उन्होंने उनके सामने एक उदाहरण भी रखा था कि जब कुछ लोगोंने जमीनके बारेमें वतनियोंके अधिकारोंमें कमी करनेके लिए प्रार्थनापत्र दिया तब अध्यक्ष क्रूगरने[1] उनको सूचित किया था कि वे उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकते। यद्यपि यह ठीक है कि व्यवहारत: वतनी लोगोंको अपनी जमीनोंका पंजीकरण स्वयं अपने नाम करानेकी इजाजत न थी, परन्तु, महान्यायवादीने स्पष्ट बताया है कि, उनकी जमीनें वतनी मामलोंके आयुक्तके नाम पंजीकृत होनेपर भी, उक्त अधिकारीको उनके सम्बन्धमें निजी विवेकके प्रयोगका अधिकार नही मिल जाता था। वह जमीनको उक्त वतनीके न्यासीकी हैसियतसे ही अपने नाम लिखा सकता था और जमीनके असली मालिकके निर्देशसे उसके स्थानमें किसी दूसरे वतनीका नाम लिखानेके लिए बाध्य था, ताकि वह दूसरा वतनी न्यासके लाभका अधिकारी हो जाये। सर जॉर्ज फेरारके[2] नेतृत्वमें वतनी-विरोधी लोगोंके शोरगुल मचानेपर, सर रिचर्ड सॉलोमनने अपनी इच्छाके बहुत-कुछ विरुद्ध यह वचन दे दिया है कि वे वतनियोंकी जमीनोंका पंजीयन वतनी मामलोंके आयुक्तके नाम करनेके रिवाजको कानूनका रूप देनेके लिए एक विधेयक पेश करेंगे। रैंड अग्रगामी संघने इसके विरुद्ध फिर आन्दोलन शुरू कर दिया है। उनकी जिद है कि वतनी मामलोंके आयुक्तको उनका न्यासी बननेसे इनकार करनेका अधिकार होना चाहिए। यदि उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत हो गई तो वतनियोंको युद्धसे पहले जमीनका मालिक होनेका जो अधिकार था, वह निश्चय ही छिन जायेगा।

गिरजा-परिषदने इसी प्रकारके आन्दोलनके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है। श्री हॉस्केनके नेतृत्वमें उसके शिष्टमण्डलने लॉर्ड सेल्बोर्नके सामने यह स्पष्ट कर दिया है कि जबसे ट्रान्सवालपर ब्रिटिश अधिकार हुआ है तबसे रंगदार लोगोंके साथ जो व्यवहार हो रहा है वह पहलेकी अपेक्षा ज्यादा बुरा है। उन्होंने और उनके साथी सदस्योंने यह भी कहा कि बहुत-से लोग युद्धको इसलिए ठीक समझते थे कि उनकी सम्मतिमें यह स्वतन्त्रताका युद्ध था। पादरी श्री फिलिप्सने कहा कि वे अपनी गाँठसे धन व्यय करके धर्म-युद्धके पक्षमें प्रचार करने इंग्लैंड गये थे, क्योंकि बोअर शासनमें रंगदार लोगोंपर जो ज्यादतियाँ की जा रही थीं उन्हें वे सहन नहीं कर सके थे। परन्तु पादरी साहबने अब अनुभव किया है कि इन जातियोंकी हालत ब्रिटिश शासनमें तनिक भी नहीं सुधरी है।

लॉर्ड सेल्बोर्नने उत्तर वही दिया जिसकी आशा की जाती थी। उन्होंने इस प्रश्नका अध्ययन पर्याप्त रूपसे नहीं किया था। इसलिए वे कोई मत प्रकट नहीं कर सके। परन्तु परमश्रेष्ठने कहा :

> **यदि ब्रिटिश शासनमें सभ्य अथवा असभ्य वतनियोंके साथ किसी प्रकारका अन्याय होता है तो यह हमारे शासनपर कलंक और धब्बा है और ऐसा विषय है जिसके बारेमें मैं व्यक्तिगतरूपमें अनुभव करता हूँ कि यह अपयशकी बात है।**

१. स्टीफेनस जोहानिस पॉल्स क्रूगर, (१८२५-१९०४), बोअर नेता, ट्रान्सवालके राज्याध्यक्ष १८८३-१९००।
२. ट्रान्सवाल विधान परिषदके नामजद सदस्य।

ये शब्द उस व्यक्तिने कहे हैं जो ट्रान्सवालका शासक है। ईश्वर करे, परमश्रेष्ठने जिस नीतिका इस प्रकार साहसपूर्वक प्रतिपादन किया है, उसे क्रियान्वित करनेका भी उन्हे यथेष्ठ साहस और बल प्राप्त हो।

ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह मुलाकात महत्त्वहीन नही है। शिष्टमण्डलने परमश्रेष्ठसे जो कुछ कहा, वह सब उनपर भी समान रूपसे लागू होता है। और लॉर्ड सेल्बोर्नने जिस नीतिका प्रतिपादन किया वही नीति समस्त ब्रिटिश प्रजाओंपर लागू होने योग्य है। यह खुशीकी बात है कि लॉर्ड सेल्बोर्नके रूपमें ट्रान्सवालको ऐसा गवर्नर और दक्षिण आफ्रिकाको ऐसा उच्चायुक्त मिला है जो कि विरोधी स्वार्थोंके बीच न्यायके लिए कृतसंकल्प है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-८-१९०५

५६. नेटालके नये कानून

नेटाल ससदने वस्तीके सम्बन्धमें और जमीनपर कर लगानेके सम्बन्धमे जो कानून बनानेका विचार किया था वह समाप्त हो गया है। विधान परिषदने इन दोनो विधेयकोंको और वतनियों-पर कर लगाने-सम्बन्धी विधेयकको अस्वीकार कर दिया है। इसलिए हमे बस्तीके सम्बन्धमे जो भय था वह फिलहाल तो दूर हो गया है। यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि ये विधेयक हमारी अर्जीके कारण समाप्त हुए है, फिर भी इतना तो निःसन्देह है कि हमारी अर्जीका असर पड़ा है। इससे हमें यह सबक लेना है कि यदि हम मेहनत करें तो कुछ-न-कुछ फल मिले बिना नही रह सकता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-८-१९०५

५७. ट्रान्सवालमें वतनियोंको जमीनका अधिकार

[ट्रान्सवालका सर्वोच्च न्यायालय सदा काले लोगोंको लाभ पहुँचाया करता है, अर्थात् वह न्यायकी अदालतमें गोरोंकी दहशत माने बिना, काले-गोरेको समान समझकर इन्साफ करता है।] रुडीपोर्टमे काफिर लोगोंका गिरजाघर है। उस गिरजाघरके उसके न्यासियोके नाम चढ़ानेकी अर्जी देनेपर उच्च न्यायालयने[1] निर्णय दिया है कि इस प्रकारकी जमीन काले लोगोके नाम दर्ज की जा सकती है। जमीनका इस प्रकार दर्ज किया जाना कानूनन मना नही है। इस मुकदमेसे प्रतीत होता है कि प्रिटोरिया, हीडेलबर्ग आदि स्थानोंमें जो मस्जिदे है, वे न्यासियोंके नामपर चढाई जा सकती है। यह प्रश्न प्रिटोरिया आदिकी जमातोके ध्यान देने योग्य है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-८-१९०५

१. सर्वोच्च न्यायालयके स्थानपर उच्च न्यायालय शायद भूलसे लिख दिया गया।

५८. इंग्लैंड और जापानके बीच सन्धि

इंग्लैंड और जापानके बीच जो सन्धि हुई थी उसपर पुनर्विचार करनेका समय निकट आ रहा है; इसलिए इस सम्बन्धमें ब्रिटिश राजनयिक क्षेत्रोंमें चर्चा चल रही है। दोनों राज्योंके बीच ३० जनवरी १९०२ को पाँच वर्षके लिए सन्धि हुई थी। लेकिन उसमें यह भी शर्त थी कि चौथे वर्षके अन्त तक किसी भी पक्षकी तरफसे उस सन्धिको तोड़नेकी पूर्व सूचना न मिले तो वह पाँच वर्षके उपरान्त भी कायम रहे, और उसके बाद जो पक्ष उसे तोड़ना चाहे वह एक वर्ष पहले इत्तला भेजे। यदि इस सन्धिकी समाप्तिके समय कोई पक्ष युद्धमें उलझा हो तो यह सन्धि तबतक कायम रहे जबतक युद्ध शान्त न हो जाये।

इसके अतिरिक्त यदि दोनोंमें से एक पक्षको किसी शक्तिके विरुद्ध लड़ाई छेड़नी पड़े तो दूसरे पक्षको किसी तीसरी शक्तिको उसमें शामिल होनेसे रोकनेका प्रयत्न करना चाहिए। और यदि कोई तीसरी शक्ति लड़ाईमें उतरे हुए पक्षके मुकाबले विरोधी पक्षको सहायता दे तो दूसरा पक्ष लड़ाईमें व्यस्त पक्षकी सहायता तुरन्त करे।

ऊपरकी शर्तोंके अनुसार यदि आगामी वर्षकी ३० जनवरी तक सन्धि भंग करनेकी चेतावनी किसी पक्षको नहीं मिलती, तो यह सन्धि पाँच वर्ष उपरान्त भी जारी रहेगी। इसके विपरीत यदि इस बीच सन्धि-भंग करनेकी चेतावनी दे दी गई और सन्धिकी अवधिका अन्त होनेपर भी रूसके साथ युद्ध चलता रहा तो भी युद्धकी समाप्ति तक सन्धि कायम रहेगी।

इंग्लैंड और जापान दोनों पक्षोंके लिए सन्धि बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। वास्तवमें तो इससे सारी दुनियाको लाभ हुआ है, ऐसा मानना चाहिए। क्योंकि, यदि रूसकी सहायताके लिए कोई तीसरी शक्ति मैदानमें आती तो इंग्लैंडको जापानकी मददके लिए लड़ाईमें आना पड़ता और ऐसा होनेपर एक बड़े पैमानेपर संसारकी शान्तिमें गहरी बाधा उपस्थित होती, ऐसा दिखाई पड़ रहा है। इस सबसे ऐसी आशा करनेके पर्याप्त कारण मौजूद हैं कि यह सन्धि आगे भी कायम रहेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–८–१९०५

५९. पत्र : तैयब हाजी खान मुहम्मद ऐंड कम्पनीको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त १२, १९०५

सेठ श्री तैयब हाजी खान मुहम्मद ऐंड कं०,

आपका पत्र मिला। अब उच्चायुक्तको पत्र नहीं लिखा जा सकता। विलायत पहुँचना ही बाकी रहा है। अथवा यहाँ फिर गड़बड़ी हो तो भी सम्भव है। वहाँके महापौरसे मिलिए और उनसे पूछिए, क्या कहते हैं। मैं तुरन्त विलायतको लिखनेकी सलाह नहीं दे सकता। क्योंकि अगर तैयब सेठ आते हैं तो सच्ची लड़ाई यहीं लड़नी है। ज्यों-ज्यों दिन निकलते जायेंगे, कठिनाई बढ़ती जायेगी। नीचे लिखे मुताबिक तार करें तो अच्छा होगा :

उच्चायुक्त दावेमें हस्तक्षेपसे इनकार करते हैं। आपको आनेकी जोरदार सलाह देता हूँ।[1]

तयब सेठको अनुमतिपत्रकी जरूरत नही पड़ेगी, इसलिए उसकी कोई फिक्र नही करती है।

मो० क० गांधीके सलाम

सेठ तैयब-हाजी खान मुहम्मद ऐंड कं०
बॉक्स ३५७
प्रिटोरिया

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९३४

६०. पत्र: हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त १४, १९०५

सेक्रेटरी साहब,

आपका पत्र आनेसे मुझे अपने भाषण[2] याद आ रहे है। मैंने आपसे कहा था कि 'स्टार'की तारीखें भेजूंगा। चारों भाषण १०, १८ और २९ मार्चके 'स्टार' मे प्रकाशित हुए है। इन सारे भाषणोको चाहे जहाँ भेजकर इनका खुलासा करानेमे मेरी पूरी रजामन्दी है। मैंने इन भाषणोंको फिर अग्रेजीमे पढा है। और मुझे कहना चाहिए कि इनमे किसी भी धर्मके विरुद्ध मैंने एक भी कड़वा शब्द नही कहा है। इनमे हरएककी तारीफ की है और प्रत्येककी खूबियाँ बताई है। मुझे स्वप्नमे भी किसीको दुःख पहुँचानेका खयाल नही आता। फिर भी ये कितने ही भाइयोको बुरे लगे हैं, इसका मुझे दुःख है। और किसी भी प्रकारसे यदि मैं उनका मन शान्त कर सकूं तो ऐसा करना चाहता हूँ। यदि और भी स्पष्टीकरण आवश्यक हो तो लिखिए।

मो० क० गांधीके सलाम

श्री हाजी हबीब
बॉक्स ५७
प्रिटोरिया

गाधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९५०

१. मूल पत्रमें तारके इस मसविदेका मजमून अंग्रेजीमें है।
२. गाधीजीके हिन्दू धर्मपर दिये गये चार व्याख्यान, देखिए, खण्ड ४, पृष्ठ ३९५, ४०२, ४३५।

६१. पत्र : मुख्य अनुमतिपत्र-सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त १५, १९५०

सेवामें
मुख्य अनुमतिपत्र-सचिव
पो० ऑ० बॉक्स ११९९
जोहानिसबर्ग

महोदय,

मै पत्रवाहक जॉन सौकलको उसके अनुमतिपत्र तथा पंजीयनके लिए भेज रहा हूँ। मेरी नम्र सम्मतिमें उसके पास जो कागज-पत्र है उनसे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि वह ३१ मई १९०२ को उपनिवेशमें था और तबसे यही है। वह अपने नामके पंजीयनके सिलसिलेमें जो तफसील देता है उससे यह जाहिर होता है कि उसका पंजीयन बोअर सरकारके जमानेमें हुआ होगा। मेरा खयाल भी ऐसा ही है। उसके दर्जेका आदमी किसी हालतमें पंजीकरणसे नही बच सकता, विशेषतः जब वह इतने लम्बे अरसेसे देशमें रहता हो — और पत्रवाहक निःसन्देह यहाँ लम्बे अरसेसे रहता जान पड़ता है। उसने मुझसे कहा है कि इस समय उसकी पहचानके ऐसे कोई लोग जोहानिसबर्गमें नही है जो इस बातको प्रमाणित कर सके कि उसने बोअर सरकारके जमानेमें अपना नाम दर्ज कराया था। आदमी मुझे बहुत गरीब लगता था। इसलिए मुझे विश्वास है कि अगरचे वह पहले ३ पौंड जमा करनेके सम्बन्धमें हलफिया बयान पेश करनेकी स्थितिमें नहीं है, आप उसे अनुमतिपत्र दे देंगे और उसका नाम भी नये सिरेसे दर्ज करवा देंगे। मुझे मामला बिलकुल सच्चा और सहानुभूतिके योग्य जान पड़ता है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९७१

६२. पत्र : अब्दुल रहमानको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त १६, १९०५

श्री अब्दुल रहमान
पो० ऑ० बॉक्स १२
पाँचेफस्ट्रूम

प्रिय महोदय,

कल्याणदासको[1] 'इंडियन ओपिनियन' के चन्देके सम्बन्धमें आपने जो मदद दी, उसके लिए आपको बहुत धन्यवाद। आपने मुझसे पाँचेफस्ट्रूममें रखे मालके बीमेका जिक्र किया था। एक

१. कल्याणदास जगमोहनदास मेहता १९०३ में गांधीजीके साथ दक्षिण आफ्रिका गये थे और वहाँ वे उनके साथ ५ वर्ष रहे। उन्होंने १९०४ में जोहानिसबर्गके प्लेगके समय बहुत काम किया था।

कम्पनी है जो, अगर इमारत अच्छी और उपयुक्त हो तो, मेरा खयाल है ७ पौंड ६ शिलिंगके हिसाबसे, ऐसे मालका बीमा कर सकती है। अगर कोई अपने मालका बीमा करानेके इच्छुक हो तो मेहरबानी करके मुझे खबर कीजिये।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), संख्या ९८१

६३. क्या भारत जागेगा?

कर्जन साहब बंगालके दो भाग करके एक भाग असममें जोड़ देनेकी कोशिशें काफी अरसेसे कर रहे हैं। वे इसका कारण यह बताते हैं कि बंगाल इतना बड़ा प्रान्त है कि उसका सारा काम-काज एक गवर्नर नही देख सकता। असम एक छोटा-सा प्रान्त है, उसकी जनसख्या बहुत कम है, लेकिन यह बगालसे लगा हुआ है। इसलिए माननीय गवर्नर जनरलका इरादा है कि बगालका कुछ हिस्सा असममे मिला दिया जाये। बगाली लोग कहते है कि बगाली और असमी दोनों बिलकुल अलग-अलग है। बंगाली अत्यन्त शिक्षित है। वे एक जमानेसे एक साथ रहते आये हैं। उनको विभक्त करके उनका बल तोड़ देना और उनमें से बहुतोको असमके साथ मिला देना, यह बड़े अन्यायकी बात है। इस बारेमें बहुत चर्चा हो चुकी है। कुछ दिन पहले श्री ब्रॉड्रिकने बताया था कि उनको कर्जन साहबका विचार पसन्द आया है। यह समाचार जबसे भारत पहुँचा है तबसे बगालमें गाँव-गाँव सभाएँ की जा रही हैं। उनमे सभी लोगोने भाग लिया है। सुना है, चीनी व्यापारी भी इनमे शरीक हुए हैं। ये सभाएँ इतनी विशाल हुई बताई जाती हैं कि इनके बारेमे तार ठेठ दक्षिण आफ्रिका तक पहुँचे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सभाओमे प्रथम बार ही ऐसे प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये हैं कि सरकार घबड़ा जायेगी। मालूम होता है, भाषणोमे यह कहा गया है कि यदि सरकार न्याय न करे तो भारतके व्यापारी विलायतके साथ बिलकुल व्यापार न करे। यह बात हम लोगोने चीनसे सीखी, यह हमे स्वीकार करना चाहिए। किन्तु यदि सचमुच ही इसके अनुसार अमल कर दिखाया जाये तो हमारे कष्टोंका अन्त शीघ्र हो जायेगा और इसमें कोई आश्चर्यकी बात न होगी। क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो विलायतको बड़ा नुकसान पहुँचेगा। इसके खिलाफ सरकारको कोई उपाय भी न मिलेगा। लोगोंसे व्यापार करनेकी जबरदस्ती नही की जा सकती। यह उपाय बहुत सीधा और सरल है। लेकिन क्या हमारे लोग बगालमें इतना ऐक्य बनाये रखेंगे? देशके हितके लिए व्यापारी लोग हानि सहन करेंगे? यदि हम इन दोनों प्रश्नोंके उत्तरमे हाँ कह सकें तो मानना होगा कि भारत सचमुच जाग गया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-८-१९०५

६४. सर मंचरजी और श्री लिटिलटन

ट्रान्सवालमें भारतीयोंपर पड़नेवाली मुसीबतोंके सम्बन्धमें गत वर्ष विधान-परिषदमें यह प्रस्ताव किया गया था कि श्री लिटिलटन आयोगकी नियुक्ति करें। सर मंचरजीने लिखा था कि वे इस आयोगकी नियुक्तिके सम्बन्धमें अपनी सम्मति दे रहे हैं। उन्होंने इस बारेमें फिर जो प्रश्न किया है उसके उत्तरमें श्री लिटिलटनने कहा है कि अभी इस सम्बन्धमें परामर्श हो रहा है। इससे पता चलता है कि श्री लिटिलटनके साथ ट्रान्सवालकी सरकार झगड़ती रहती है और दोनों एकमत नहीं हैं। श्री लिटिलटनकी माँग यह है कि नेटाल उपनिवेशके लिए प्रवासी अधिनियमके समान कानून बनाये जायें, और सर आर्थर लाली चाहते हैं कि केवल भारतीयोंपर ही लागू होनेवाले कानून बनाये जायें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–८–१९०५

६५. एलिजाबेथ फ्राइ[1]

अंग्रेज लोग हमपर शासन करते हैं और हमारी हालत खराब है, इसके कई कारण हैं। इनमें से एक कारण यह है कि इस जमानेमें अंग्रेजोंमें, हमारी अपेक्षा बहादुर, धार्मिक और पवित्र स्त्री-पुरुष अधिक हुए मालूम पड़ते हैं। कुछ भी हो, पवित्र स्त्री-पुरुषोंके जीवन वृत्तान्त जाननेसे और उनपर सतत मनन-चिन्तन करनेसे हमें लाभ होगा ही, ऐसा समझकर समय-समयपर हम इस प्रकारके जीवन-वृत्तान्त देते रहेंगे। हमें आशा है कि इस अखबारके पाठक इन्हें पढ़कर और वैसा ही आचरण करके हमको प्रोत्साहित करेंगे। हम पहले लिख चुके हैं कि 'इंडियन ओपिनियन'की फाइल प्रत्येक ग्राहक रखे। हम इस अवसरपर उस बातकी याद पुनः दिलाते हैं।

इंग्लैंडमें एक शताब्दी पहले श्रीमती एलिजाबेथ फ्राइ हो गई हैं। वे अत्यन्त धार्मिक महिला थीं और उनका ध्यान मानव-जातिके दुःख दूर करनेकी ओर रहता था। वे खुद हमेशा बीमार रहा करती थीं; किन्तु इस बातकी उन्होंने परवाह नहीं की। अपने ऊपर कष्टोंके आनेसे वे हारती न थीं। इंग्लैंडमें न्यूगेट नामका एक कारागृह है। उसमें सौ वर्ष पहले कैदी स्त्री-पुरुष बुरे ढंगसे रखे जाते थे। उनकी सार-सँभाल कोई नहीं करता था। उनकी दशा बहुत खराब थी। उनमें अपराध घटनेके बदले बढ़ते थे। उनका जीवन बहुत-कुछ जानवरों-जैसा था। नतीजा यह होता था कि जो लोग न्यूगेटमें कैद काटकर बाहर आते थे उनकी दशा दयनीय हो जाती थी। यह कष्ट साधु-प्रकृति एलिजाबेथ फ्राइसे देखा नहीं गया। उनका जी संतप्त हो उठा और उन्होंने अपना जीवन इस प्रकारके कैदियोंकी हीन दशा सुधारनेमें अर्पित कर दिया। वे अधिकारियोंकी स्वीकृति प्राप्त करके, मुख्यतः स्त्री कैदियोंकी सहायता करने लगीं। वे उनको सुख-सुविधाएँ दिलातीं। इतना ही नहीं, उन्होंने लेख लिखकर तथा अपने परिश्रमसे

१. एलिजाबेथ फ्राइ, १७८०–१८४५, सोसाइटी ऑफ फ्रैंड्सकी सदस्या थीं। वे जेल-सुधारकी अग्रणी थीं।

अधिकारियों द्वारा अनेक सुधार करवाये। इस प्रकारके परिश्रमके फलस्वरूप कैदियोंकी स्थिति बहुत सुधर गई। किन्तु उनके लेखे यह पर्याप्त नहीं था। उन दिनों कैदियोंको आस्ट्रेलिया भेजा जाता था। जहाजमे उनको वड़ा कष्ट दिया जाता था। स्त्री कैदियोकी आबरू भी न रह पाती थी। एलिजाबेथने देखा कि अपने किये कराये सारे कामपर इन कैदियोको ले जानेमे पानी फिर जाता है। इस कष्टको मिटानेके लिए वे स्वय बड़ी मुसीबते झेल कर जहाजोंपर आया-जाया करती थी। अन्तमें उन्होने जहाज-यात्राके कष्टोंको भी दूर कराया। फिर आस्ट्रेलियामे कैदियोको जो कष्ट होता था उसमें भी सुधार करवाया और अन्तमें कानून बना कि आस्ट्रेलियामें पहुँचनेपर छ: महीने तक तालीम देनेके बाद कैदियोको दूसरोकी नौकरीमे सौप दिया जाये। इस प्रकार दु:खियोके दु:खमें बहुत भाग लेनेवाली यह भली महिला अपना दु:ख भूलकर ईश्वरका भजन करती हुई परलोक सिधारीं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-८-१९०५

६६. ब्रिटिश संघ[1] : एक सुझाव

दक्षिण आफ्रिकाको अपनी भूमिपर प्रतिष्ठित वैज्ञानिकोंके इस सघका स्वागत करनेका अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ है। ब्रिटिश विज्ञान-प्रगति संघ (ब्रिटिश असोसिएशन फॉर द एडवासमेट ऑफ साइन्स) एक ऐसी संस्था है जिसपर साम्राज्य गर्व कर सकता है। दक्षिण आफ्रिकी सघ (साउथ आफ्रिकन असोसिएशन)ने अपनी सहधर्मी संस्थाको इस देशमें बुलानेका विचार किया, यह खुशीकी बात है। इसके परिणाम दूरगामी हो सकते हैं। इससे सघका मुख्य उद्देश्य — यानी विज्ञानका प्रचार — तो सिद्ध होगा ही, उसमें भी एक बड़ा लाभ यह होगा कि ब्रिटेन, दक्षिण आफ्रिका और अन्य उपनिवेश एक-दूसरेके निकट आ जायेंगे। यह तीसरा अवसर है कि संघकी बैठक ब्रिटिश द्वीप-समूहके बाहर हो रही है। ऐसी यात्राओंके महत्त्व तथा, जिस सहृदयतासे सदस्योंका स्वागत किया गया है, उसे देखते हुए यह नही लगता कि यह क्रम अब टूटेगा। हम उस दिनकी प्रतीक्षामें है जब यह बैठक भारतमे होगी। हमे विश्वास है कि ऐसी बैठकसे न केवल भारतका हित होगा, बल्कि संघको भी लाभ होगा।

हमें एक नम्र सुझाव रखना है। हमने कहा है कि बाहरके देशोको ऐसी यात्राएँ साम्राज्यके दूर-दूर तक फैले हुए उपनिवेशोंको जोड़नेमे बहुत सहायक होंगी। और इसलिए कि सघको सर्वत्र उसके वास्तविक रूपमें मान्य किया जाये, अर्थात् यह कि संघ साम्राज्यकी एक बड़ीसे-बड़ी सपत्ति है, हम चाहेंगे कि उसका वर्तमान नाम बदल कर 'ब्रिटिश साम्राज्य विज्ञान प्रगति संघ' कर दिया जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-८-१९०५

१. १८३१ में स्थापित।

६७. लॉर्ड कर्जन

होनी होकर रही। लॉर्ड कर्जन अब भारतके वाइसराय नहीं रहे। यह भाग्यकी विडम्बना है कि जब उनका हटाया जाना अशक्य मालूम पड़ता था तभी उन्हें अत्यन्त अपमानजनक परिस्थितियोंमें जाना पड़ा। वे ऐसे वाइसराय थे जिनके लिए प्रतिष्ठा ही सब कुछ थी और जो अपने हाथमें लिये हुए कामोंमें सफलता प्राप्त करनेके लिए अपनी प्रतिष्ठापर बहुत ज्यादा भरोसा रखते थे। अब उन्हे भारतसे जाना पड़ा है, तब उनकी प्रतिष्ठा नामके लिए भी शेष नहीं रही है। उनपर यह दुर्भाग्य युद्ध-मन्त्री द्वारा लगाये गये लाञ्छनके कारण आया। इससे वह अधोगति और भी स्पष्ट हो जाती है जो उन्हें सहनी पड़ी। ऐसा लगता है मानो यह उन करोड़ों पीड़ितोंकी प्रार्थनाका ही फल था जो उनके स्वेच्छाचारी शासनमें कराह रहे थे।

हमारा खयाल है कि लॉर्ड कर्जनने जो कुछ किया, नेकनीयतीसे प्रेरित होकर किया। उनका विश्वास निस्सन्देह यह था कि भारतीयोंके विरोधके बावजूद, वे खुद जिन बातोंको सुधारका नाम देना पसन्द करते उन्हें जबरदस्ती लोगोंके गले उतारकर उनका हित ही कर रहे हैं। पद सँभालते ही उन्होंने जो ऊँची आशाएँ उत्पन्न की थीं वे अन्य किसी वाइसरायने कभी नहीं की। उनके भाषणोंसे भारतीय विश्वास करने लगे थे कि वे भारतीय समस्याओंके समाधानके मामलेमें लॉर्ड रिपनसे[1] बाजी मार ले जायेंगे। ब्रिटिश सैनिकोंके व्यवहारके सम्बन्धमें उन्होने जो सम्मति लिखी थी उसके द्वारा उन्होने अपने वचनोंको कार्यरूप देकर भी दिखा दिया था। नमक-करमें कमी और दक्षिण-आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीयोंके पक्षका समर्थन उनको सदा ही ख्याति देंगे। परन्तु इन बातोंको पूरी गुंजाइश छोड़नेके पश्चात् भी, विशुद्ध परिणाम यह है कि उन्होंने अपने कार्य-कालका आरंभ लोगोंकी जितनी सद्भावनाके साथ किया था उसके अन्तमें वे उनकी उतनी ही अप्रियता कमा चुके हैं। यद्यपि उन्हें त्यागपत्र एक ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण कारणसे देना पड़ा जो कि असैनिक शासनपर सैनिक निरंकुशताकी जीतका सूचक है, यद्यपि हम यह कल्पना बखूबी कर सकते हैं कि आज हजारों भारतीय घरोंमें आनन्द मनाया जा रहा होगा और ईश्वरको धन्यवाद दिया जा रहा होगा —— इस मुक्तिपर, जो शुभ समझी जायेगी; और वह अकारण नही।

लॉर्ड कर्जनकी कारगुजारियोंको देखते हुए किसी नये वाइसरायसे कोई आशाएँ बाँधना बड़ा जोखिम-भरा काम हो गया है। यदि हम सुखी होना चाहते हैं तो शायद कोई आशा न बाँधना ही ज्यादा निरापद है। परन्तु मनोनीत वाइसराय लॉर्ड मिंटोके रूपमें भारतको एक उदात्त पुरुष मिल रहा है। भारत उनसे अपरिचित भी नहीं है, क्योंकि वे एक ऐसे प्रतिष्ठित वंशके हैं जिसका एक और भी व्यक्ति[2] भारतका वाइसराय रह चुका है। अपने औपनिवेशिक अनुभवसे भारतके शासनमें उन्हें अपरिमेय सहायता मिलनेकी सम्भावना है। उपनिवेशोंके शासनकी परम्पराएँ सदा विशुद्ध वैधानिक रही हैं और यदि भारतमें भी उनका पालन किया गया तो सम्राट एडवर्डके साम्राज्यके उस भागमें अगले पाँच वर्ष तक शान्तिपूर्ण शासनकी आशा की जा सकती है। ईश्वर करे कि ऐसा ही हो। उस देशमें एक बार फिर दुर्भिक्षका खतरा है; वहाँ अब भी लोग प्लेगसे मर रहे हैं; और निर्धनता प्रतिदिन लाखों घरोंको खोखला किये दे रही है। इन तिहरी

१. (१८२७–१९०९) भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल, १८८०–४ और उपनिवेश मंत्री, १८९२–५।
२. अर्ल मिंटो प्रथम, फोर्ट विलियम, बंगालके गवर्नर–जनरल : १८०७–१३

भयंकर आपत्तियोंसे रक्षाका एकमात्र उपाय यह है कि शासितोंके साथ अधिकतम सहानुभूति और दयालुताका व्यवहार किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-८-१९०५

६८. प्रोफेसर परमानन्द

ऐंग्लो-वैदिक कॉलेजके प्रतिष्ठित विद्वान, प्रोफेसर परमानन्दको अब हमारे बीच रहते कुछ सप्ताह हो चुके है। उन्होंने बड़ी-बड़ी सभाओंमें रोचक व्याख्यान दिये हैं। उनका उद्देश्य आर्यसमाजकी शिक्षाओका प्रचार करनेका जान पड़ता है। इस समाजने, इसके धार्मिक सिद्धान्त कुछ भी हो, अत्यन्त उपयोगी और व्यावहारिक कार्य किया है। इसने सच्चे देशभक्त और बहुत-से आत्मत्यागी शिक्षक उत्पन्न किये है। कुछ महीने पूर्व भारतमे जो भयकर भूकम्प आया था, उसमें भी आर्यसमाज उत्तम काम कर चुका है। प्रोफेसर परमानन्द कार्यकर्त्ताओके उसी समाजसे सम्बन्धित है, और इसलिए दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोसे उनको हार्दिक स्वागत पानेका हक है। निश्चय ही, हम लोगोंके बीच विद्वान और सुसस्कृत भारतीय बहुत नही आ सकते।

लेकिन प्रश्न यह है कि हम ऐसे व्यक्तियोसे क्या लाभ उठाये या वे हमारा क्या उपयोग करें। हम कबूल करते है कि अपने बीच धार्मिक आधारपर तीव्र प्रचार-कार्यके लिए हम अभी परिपक्व नही हैं। यहाँकी जमीन इस कार्यके लिए तैयार नही है। हरएक मजहब अपने लिए अलगसे अपना प्रचारक और हितरक्षक रख नही सकता, सो बात नही है। आर्यसमाज भारतके किसी स्थापित रूढ़िगत धर्मका प्रतिनिधित्व नही करता। यदि हम यह कहें कि आर्य-समाज एक ऐसा फिर्का है जो अभी अपने अस्तित्वके लिए सघर्ष और नये अनुयायी बनानेके उपयुक्त परिस्थिति तैयार कर रहा है तो इससे उसका यश कम नही होता। वह हिन्दू धर्ममे सुधारका प्रतीक है। हम अनुभव करते है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय अभी सुधारके किसी भी सिद्धान्तको ग्रहण करनेके लिए तैयार नही है। जहाँतक भारतीयोमे आन्तरिक कामका सम्बन्ध है, उनकी आवश्यकता है शिक्षण, और, जितना भी अधिक मिले उतना, ठीक प्रकारका शिक्षण। हमने सदा माना है कि भारतीय गृहस्थीमे सुधारकी गुजाइश है। और यह सुधार इन सैकड़ों भारतीय युवकोके शिक्षणके बिना न होगा जो इस उपमहाद्वीपमें प्राय. सर्वथा उपेक्षित है। हमारी नम्र सम्मतिमे प्रोफेसर परमानन्द सबसे अच्छा कार्य यह कर सकते है कि वे इस प्रश्नकी ओर अपना ध्यान ले जायें। वे जिस समाजके प्रतिनिधि है उसकी शक्ति, शुद्धता और उपयोगिता प्रदर्शित करनेका यह एक बहुत अच्छा, व्यावहारिक और प्रभावशाली उपाय है। हमारा खयाल है कि दक्षिण आफ्रिकामे भारतीय बालकोंको वेतन-भोगी अध्यापकोके द्वारा पर्याप्त शिक्षण दिलाना प्रायः असभव है। [हमें प्रारम्भिक शिक्षण तक के लिए उच्चतम योग्यता, अनुभव और संस्कृतिके अध्यापकोंकी आवश्यकता है।]

हम इन विचारोको प्रोफेसर परमानन्द और उनके द्वारा आर्यसमाज अथवा इसी प्रकारकी भारतकी अन्य संस्थाओंकी सेवामें — उनका मत या धर्म चाहे जो हो — हार्दिक विचारके लिए प्रस्तुत करनेका साहस करते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-८-१९०५

६९. विश्व-धर्म[1]

वह जमाना अब नहीं रहा जब कि किसी एक मतके माननेवाले लोग- मौका-बे-मौका कह दिया करते थे कि हमारा मजहब ही सच्चा मजहब है, दूसरे सब मजहब झूठ हैं। सभी धर्मोंके प्रति सहनशीलताकी बढ़ती हुई भावना, भविष्यके लिए शुभ-सूचक है। लन्दनसे 'क्रिश्चियन वर्ल्ड' नामक एक साप्ताहिक मजहबी अखबार प्रकाशित होता है। इसमें 'जे० बी०' नामके एक सज्जन इस विषयपर प्रायः लेख भेजा करते हैं। मैं इस समाचारपत्रमें अभी हालमें ही प्रकाशित उनके एक लेखसे कुछ उद्धरण यहाँ देना चाहता हूँ।

लेखक बहुत ही उदार और उदात्त भावनाके साथ ईसाई दृष्टिकोणसे इस प्रश्नका विवेचन करते हैं; और यह दिखाते हैं कि किस प्रकार संसारके सब मजहब आपसमें जुड़े हुए हैं और इनमें से प्रत्येकमें कुछ ऐसे लक्षण भी हैं जो सभीमें विद्यमान हैं। एक ईसाई मत-प्रचारक अखबारमें ऐसे लेखका प्रकाशित होना उल्लेखनीय है और यह प्रकट करता है कि वह समयके साथ चल रहा है। कुछ वर्ष पूर्व ऐसा लेख धर्म-विरोधी उपदेश ठहराया गया होता और उसका लेखक अपने ही उद्देश्यका द्रोही कहा जाता और निन्दाका पात्र बन गया होता।

दूसरे मजहबोंके प्रति जो नई भावना ईसाइयोंकी मनोवृत्तिको बदल रही है उसका उल्लेख करने और यह दिखानेके बाद कि किस प्रकार कुछ साल पहले यह धारणा फैली हुई थी कि अन्य अनेक झूठे मजहबोंके बीच केवल ईसाई धर्म ही एक सच्चा धर्म है, उन्होंने कहा है:

> भारी परिवर्तन हुए हैं, और इन परिवर्तनोंका एक पहलू औसत आदमीको अत्यधिक चकित कर देनेवाला यह रहस्योद्घाटन है कि वह अबतक जिन सिद्धान्तोंके बीच पला है, वे प्रारम्भिक ईसाई धर्मकी शिक्षा कभी नहीं थे। वह देखता है कि अन्य जातियों और धर्मोंके विषयमें उसे अबतक जो राय रखनी पड़ी है, पुराने धर्मोपदेशकोंमें से सबसे उदारचेता उससे बहुत भिन्न विचार रखते थे। वह मसीहा-कालके इतने समीपवर्ती जस्टिन मार्टरके विषयमें सुनता है जो सुकरातके ज्ञानको 'दिव्यवाणी' से प्रेरित मानते थे। वह ऑरिगेन और निसा-निवासी ग्रेगरीके सिद्धान्तोंका परिचय प्राप्त करता है जिसकी सीख यह है कि समस्त मानव जाति एक ही दिव्य निर्देशके अधीन है। वह लक्टेंशसके विषयमें भी सुनता है जो यह मानते थे कि ईश्वरकी सत्तामें विश्वास सभी धर्मोंका समान गुण है . . .
>
> . . . . दरअसल, प्रत्येक युगमें अपेक्षाकृत सूक्ष्म चिन्तन करनेवाले ईसाइयोंने प्रायः इसी पद्धतिपर सोचा है। जरूरत सिर्फ इस बातकी रही है कि मनुष्य अन्य जातियोंके सम्पर्कमें — चाहे साहित्यके माध्यमसे हो या साक्षात् रूपमें — आयें, जिससे वे इस बातकी अनुभूति कर सकें कि धर्मोंके बीचकी 'अलंघ्य खाई' का सिद्धान्त जीवन और आत्मा, दोनों धरातलोंपर गलत है . . .
>
> . . . . धर्म अपने विभिन्न नामों और रूपोंमें मानव-हृदयमें एक ही बीज बोता आ रहा है — ज्यों-ज्यों उसका मस्तिष्क ग्रहण करने योग्य होता गया है, उसके सामने एक ही सत्यका उद्घाटन करता आया है।

१. यह लेख 'विशेष रूपसे प्रेषित' रूपमें प्रकाशित हुआ।

लेखक आगे कहता है कि अनेक ईसाई संस्थाएँ और सिद्धान्त अन्य धर्मोके ज्ञानसे ही उत्पन्न हुए हैं। इसके अनेक प्रतीक प्राचीनकालके ध्वसावशेष ही है।

> **इस दृष्टिसे प्राचीन फारसकी मित्र-पूजा कितनी आश्चर्यजनक है! एम० क्यूमोंटके शब्दोंमें, 'ईसाइयोंकी तरह ही मित्र-धर्मानुयायी परस्पर एक होकर सुगठित समाजोंमें रहते थे, और एक-दूसरेको पिता और भाई कहकर पुकारते थे। ईसाइयोके समान ही वे 'बप्तिस्मा', 'सहभोज' और 'नामकरण' आदि संस्कारोंका पालन करते थे; सर्वमान्य नैतिकताकी शिक्षा देते थे; चारित्रिक शौच तथा आत्मत्यागका उपदेश करते थे; और आत्माकी अमरता तथा मरणोत्तर जीवनमें विश्वास करते थे'।**

अगर लेखक ईसाई धर्मको सर्वोच्च स्थान देना चाहता है तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नही। परन्तु यह देखकर सन्तोष होता है कि ईसाई लेखकों तथा समाचारपत्रोंने ऐसी उदरा मनोवृत्ति अपनायी है।

[सबके हितोंको लक्ष्य बनाकर काम करनेवाले यूरोपीयों तथा भारतीयोके लिए यह बात विशेष महत्त्व रखती है। भारतका धर्म बहुत प्राचीन है। उसके पास देनेके लिए बहुत-कुछ है। हम दोनोके बीच एकता बढ़ानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हममें एक-दूसरेके प्रति हार्दिक सहानुभूति और एक-दूसरेके मजहबके लिए आदर हो। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर और अधिक सहिष्णुताका फल हमारे दैनिक सम्बन्धोमें अधिक व्यापक उदारताके रूपमें प्रकट होगा और वर्तमान मनमुटाव मिट जायेंगे। और फिर क्या यह एक तथ्य नहीं है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच इस प्रकारकी सहिष्णुताकी महती आवश्यकता है?] कभी-कभी ऐसा खयाल आता है कि पूर्व और पश्चिमके बीच सहिष्णुताकी स्थापनाकी इतनी बड़ी आवश्यकता नही है जितनी हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच। भारतीयोंके ही आपसी संघर्ष और कलहसे उनका मेलजोल नष्ट न होने पाये। जिस समाजमे फूट है वह ढहे बिना रह नही सकता। इसलिए मै भारतीय समाजके सभी अंगोंके बीच पूर्ण एकता और भ्रातृभावनाकी आवश्यकतापर जोर डालना चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-८-१९०५

७०. रूसका नया संविधान

रूसके ज़ारने अपनी प्रजाको चुनावपर आधारित संविधान कायम करनेका जो वचन दिया था, वह अमलमें लाया गया है। उसकी धाराओंके बारेमें जो तार दक्षिण आफ्रिका आये हैं, उनसे पता चलता है कि इस समयके प्रजातन्त्रीय राज्य-विधानोंसे वह बहुत कम मेल खाता है। और वह भी भविष्यमें सही रूपसे अमलमें लाया जायेगा या नहीं, यह बहुत सन्देहपूर्ण मालूम देता है। इस विधानमें कानून बनानेकी सत्ता ऊपरी दृष्टिसे तो चुने हुए मण्डलको दी गई है; किन्तु उन सारी धाराओंके बावजूद ज़ारने अपनी राज्यसत्ता कायम रखी है। इसलिए यह विधान अजीब-सा दीखता है। चुनी हुई राष्ट्रीय परिषद जिन कानूनोंको स्वीकृत करेगी उनके लिए ज़ारकी सम्मति प्राप्त करना आवश्यक होगा। राजसत्तापर यह परिषद किसी भी प्रकारका नियंत्रण रख सकेगी, ऐसा मालूम नहीं होता। फिर भी आगे चलकर अधिक ज़ोर लगानेके लिए इस प्रकारका विधान सीढ़ीका काम देगा, इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-८-१९०५

७१. अब्राहम लिंकन

पिछले सप्ताह हमने एलिज़ाबेथ फ्राइका वृत्तान्त दिया था। इस बार अमेरिकाके एक भूतपूर्व राष्ट्रपतिका वृत्तान्त दे रहे हैं।

ऐसा माना जाता है कि गत शताब्दीमें जो बड़ेसे-बड़ा और भलेसे-भला मनुष्य हुआ, वह था अब्राहम लिंकन। अब्राहम लिंकनका जन्म सन् १८०९ में अमेरिकामें हुआ था। उस समय उसके माँ-बाप बहुत गरीबीकी हालतमें थे। १५ वर्षकी आयु तक उसे बहुत ही थोड़ा शिक्षण मिल पाया था। उसे शायद ही लिखना आता था और वह जगह-जगह चक्कर काटकर गुजारेके लायक थोड़ा-बहुत कमा लेता था।

अन्तमें उसके मनमें आगे बढ़नेका विचार पैदा हुआ। उन दिनों स्टीमरकी या अन्य किसी प्रकारकी सुविधाएँ न थीं। इसलिए वह लकड़ीके तख्तोंपर अमेरिकाकी विशाल नदियोंमें प्रवास करता हुआ कितने ही गाँवोंमें गया। एक जगह उसे मुंशीगीरीका काम मिल गया। इस समय उसकी आयु बीस वर्षकी थी। जब उसे यह नौकरी मिली तब उसके मनने यह समझाया कि कुछ अधिक अध्ययन करना चाहिए। इसपर उसने कुछ किताबें खरीद लीं और अपने ही श्रमसे अध्ययन प्रारंभ किया। इस बीच उसके एक रिश्तेदारके मनमें यह विचार आया कि यदि अब्राहम लिंकन कानूनका अध्ययन कर ले तो और उन्नति कर सकेगा। इस खयालसे उसने अब्राहम लिंकनको एक वकीलके यहाँ रखा दिया। वहाँ उसने बड़ी लगन और श्रमके साथ काम किया तथा अध्ययन भी किया। उसने अपनी चतुराईका इतना अच्छा परिचय दिया कि उसके अधिकारी बड़े प्रसन्न हुए। स्वयं उसको भी यह लगा कि मेरी स्थिति उस समाजकी सेवा करने योग्य है, जिसमें मैंने जन्म पाया है।

उसके मनमें ज्यों ही यह विचार उठा, उसने अमेरिकी रिवाजके अनुसार संसदका प्रतिनिधि बननेका इरादा किया। उसने अपनी विशेषताएँ जाहिर करनेके लिए पहला लेख लिखा। उसने बड़ी टक्कर ली, परन्तु वह स्वयं अभी इस दिशामे अनभिज्ञ था, और उसका प्रतिस्पर्धी एक प्रख्यात व्यक्ति था। इसलिए उसने पराजय पाई, किन्तु उसका शौर्य पहलेसे बढ़ गया।

उसकी भावनाएँ और भी तीव्र हो गईं। उस समयके अमेरिकाकी परिस्थितिका सही-सही चित्र जिस व्यक्तिकी कल्पनामें आ सके वही लिंकनके गुणों और उसकी सेवाको समझ सकता है। अमेरिका इस समय उत्तरसे दक्षिण तक गुलामोंका पड़ाव बना हुआ था। आफ्रिकाके नीग्रो लोगोंको सरे-आम बेचना और उन्हें गुलामीमें रखना जरा भी अनुचित नही माना जाता था। बड़े-छोटे, अमीर-गरीब सभी लोग गुलामोंको रखनेमें अनहोनापन नही मानते थे। इसमें किसीको कोई बुराई नहीं लगती थी। धार्मिक मनुष्य और पादरी आदि लोग गुलामीकी प्रथाको बनाये रखनेमें आगा-पीछा नही करते थे। कुछ तो उसे उत्तेजना देते थे और सब यही समझते थे कि गुलामीकी प्रथा भी ईश्वरी नियम है; और नीग्रो गुलामीके लिए ही जन्मे है। केवल थोड़े ही मनुष्य देख पाते थे कि यह व्यवसाय अत्यन्त दूषित और अधार्मिक है। जो इस प्रकार देख सकते थे वे मौन साधे रहते थे, ताकत नहीं आजमाते थे। कुछ लोग गुलामोंकी स्थिति सुधारनेमें थोड़ा-सा योग देकर सन्तोष कर लेते थे। उस समय गुलामोंपर जो अत्याचार किये जाते थे उसका वृत्तान्त सुनकर आज भी हमारे रोंगटे खड़े हो जाते है। उनको बाँधकर मारा-पीटा जाता था, उनसे जबरदस्ती काम लिया जाता था, उन्हें जलाया जाता था, बेड़ियाँ पहनाई जाती थी; और यह नही कि यह सब एक-दो व्यक्तियोंपर ही किया जाता हो बल्कि सबपर यही बीतती थी। इस प्रकारके विचार जिन लोगोंके दिलोंमे गहरी जड़ जमा चुके थे, उनके विरोधमें खड़े होकर उनके विचारोंको पलटनेका और इसी व्यवसायपर जिन लाखों मनुष्योंकी आजीविका थी उन मनुष्योंका विरोध मोल लेकर और उनसे लडाई करके गुलामोंको बन्धनसे छुड़ानेका निश्चय अकेले लिंकनने किया और उसे पार उतारा, ऐसा कहा जा सकता है। ईश्वरपर उसकी आस्था इतनी अधिक थी, उसका स्वभाव इतना अधिक नरम था और उसकी दया इतनी गहरी थी कि रोज-रोज अपने भाषणो, लेखों और रहन-सहनके द्वारा वह लोगोके मनको बदलने लगा। अन्तमें लिंकनका पक्ष और उसका विरोधी, ऐसे दो पक्ष पैदा हो गये और अमेरिकामें बड़ा भारी घरेलू युद्ध हुआ। लिंकन इससे जरा भी डरा नही। अबतक वह इतना ऊँचा उठ चुका था कि उसे राष्ट्रपतिका पद मिल चुका था। लड़ाई कई वर्ष तक चलती रही, परन्तु लिंकन सन् १८५८–५९ से पूर्व ही सारे उत्तर अमेरिकामें गुलामीकी प्रथा बन्द कर चुका था। गुलामोंके बन्धन टूटे। जहाँ-जहाँ लिंकनका नाम लिया जाता वहाँ-वहाँ वह लोगोंके दुःख हरनेवाले मनुष्यके रूपमें पहचाना जाता था। उसने इस संघर्षके समय जो जोशीले भाषण दिये उनकी भाषा इतनी उत्तम थी कि वे अंग्रेजी साहित्यमे बहुत ऊँचे दर्जेके भाषण माने जाते है।

[इतना ऊँचा उठ जानेपर भी लिंकन सदैव विनम्र बना रहा। वह हमेशा यह मानता था कि जो प्रजा या व्यक्ति शक्तिशाली हो, उसे अपने बलका उपयोग गरीब अथवा कमजोर लोगोंका दुःख मिटानेके लिए करना चाहिए,] न कि ऐसे लोगोंको कुचलनेके लिए। यद्यपि अमेरिका उसकी अपनी जन्मभूमि थी और वह स्वयं अमेरिकी था फिर भी समस्त संसार अपना देश है, ऐसा वह मानता था। वह उन्नतिके शिखर तक पहुँच गया था और उसका व्यक्तित्व इतना श्रेष्ठ था, तिसपर भी कुछ दुष्ट लोग यह मानते थे कि गुलामीकी प्रथाको हटाकर लिंकनने बहुत लोगोंको हानि पहुँचाई है। इसलिए एक बार जब यह निश्चित मालूम हुआ कि लिंकन नाटक-

घरमें जानेवाला है तब उसको धोखेसे मार डालनेका षड्यन्त्र रचा गया। नाटकघरके पात्रोंको ही फोड़ दिया गया था और एक मुख्य पात्रने उसको गोली मारनेका बीड़ा उठाया था। जब वह नाटकमें अपनी विशेष कोठरीमें बैठा था तब वह दुष्ट मनुष्य उस कोठरीमें गया, दरवाजा बन्द किया और लिंकनको गोली मार दी। यह भला मनुष्य चल बसा। जब लोगोंने यह भयानक घटना देखी तब किसी न्यायकी अदालतमें जानेसे पहले ही उन्होंने उस हत्यारेको चीर[1] डाला। ऐसी करुण रीतिसे अमेरिकाके इस महान राष्ट्रपतिकी मृत्यु हुई। हम कह सकते हैं कि लिंकनने दूसरोंके दुःख मिटानेके लिए अपनी जिन्दगी न्योछावर कर दी। इसके बावजूद कहा जा सकता है कि लिंकन अब भी जीवित है। उसका बनाया हुआ संविधान अबतक अमेरिकामें चल रहा है। और जबतक अमेरिकाका अस्तित्व है तबतक लिंकनका नाम प्रख्यात रहेगा। ऊपरके वृत्तान्तसे पता चला होगा कि लिंकन अमर हो गया है, इसका कारण उसका बड़प्पन, चतुराई अथवा धन नहीं था; उसकी भलाई थी। लिंकन जैसे श्रेष्ठ तत्त्व जिस-जिस प्रजामें होते हैं अथवा होंगे वह प्रजा आगे बढ़ सकती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६–८–१९०५

७२. पत्र: गवर्नरके निजी सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ३०, १९०५

सेवामें
निजी सचिव,
गवर्नर, ऑरेंज रिवर कालोनी

महोदय,

ऑरेंज रिवर कालोनीके रंगदार लोगोंको प्रभावित करनेवाले नगरपालिकाके कुछ उपनियमोंके सम्बन्धमें मेरे संघने पिछली १ जुलाईको[2] जो निवेदन किया था, उसके उत्तरमें आपका १८ अगस्तका पत्र, नम्बर पी० एस० १५/०५, प्राप्त हुआ।

मेरा संघ आदरपूर्वक निवेदन करता है कि यदि बस्तीमें ब्रिटिश भारतीय हैं ही नहीं तो बस्तीके विनियमोंका वहाँ लागू करना ब्रिटिश भारतीय समाजका अकारण अपमान करना है— विशेषकर उस अवस्थामें जब कि मेरे संघने अभी तक यह आशा नहीं छोड़ी है कि उक्त उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंको किसी-न-किसी दिन प्रवास-सम्बन्धी राहत मिलेगी ही। मेरा संघ यह नहीं समझ पाता कि जो बस्ती-उपनियम वतनियोंको लक्ष्यमें रखकर बनाये गये हैं उन्हें एक कृत्रिम परिभाषा देकर ब्रिटिश भारतीयोंपर क्यों लागू किया जा रहा है।

वतनी नौकरोंके अनिवार्य पंजीयनके नियमपर मेरे संघने कोई आपत्ति नहीं की है; किन्तु संघकी विनम्र सम्मतिमें ब्रिटिश भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंकी बराबरीपर रख

१. वास्तवमें पीछा करनेवाले सिपाहियोंने अस्तबलमें आग लगायी और उसमें छिपे हत्यारे बूथको गोलीसे उड़ा दिया था।

२. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ६।

देना सिद्धान्तः अनुचित और अन्यायपूर्ण है। अत., मुझे आपसे इस मामलेमें राहतकी प्रार्थना करनेका निर्देश दिया गया है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २३–९–१९०५

७३. पत्र : मुख्य अनुमतिपत्र सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
सितम्बर १, १९०५

सेवामें
मुख्य अनुपतिपत्र सचिव
पो० ऑ० वॉक्स ११९९
जोहानिसवर्ग

महोदय,

मेरे संवको सूचना मिली है कि अनुमतिपत्र कार्यालयमें एक नया नियम लागू किया गया है। उसके अनुसार ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंके लिए आवश्यक हो गया है कि वे बजाय दो ज्ञात सन्दर्भ देनेके, जैसा कि अबतक देते रहे हैं, दो यूरोपीय सन्दर्भ दें। मेरे संघका नम्र निवेदन है कि यह प्रस्तावित नियम पहले तो ब्रिटिश भारतीय समाजके लिए एक अपमान है; क्योंकि इससे भारतीय साक्षीपर विश्वासकी कमी ध्वनित होती है, और दूसरे यह अव्यावहारिक भी है; क्योकि बिरले ही भारतीय ऐसे हैं जिनको यूरोपीय लोग नामसे जानते हैं। दूकानदार, उनके सहायक, बिक्री कर्मचारी और ब्रिटिश भारतीयोंके घरेलू नौकर यूरोपीयोंके सम्पर्कमें कदाचित् ही आते हैं। उनसे यह आशा करना कि वे यूरोपीय सन्दर्भ प्रस्तुत करें अनुमतिपत्रके लिए उनके प्रार्थनापत्रको अस्वीकार करनेके बराबर है। तीसरे, यह घूसखोरीको बढ़ावा देगा; क्योकि यह सर्वथा संभव है कि थोड़ेसे नीतिभ्रष्ट भारतीयोंके लिए थोड़े-से वैसे ही यूरोपीयोंको खोज लेना कठिन न होगा। ऐसे यूरोपीय किसी भी लाभके खयालसे झूठी कसम खानेको तैयार हो जायेंगे।

इसलिए मेरा संघ नम्र निवेदन करता है कि सुरक्षाका एकमात्र उपाय इसी बातमें है कि सन्दर्भ सम्माननीय हों और इस बारेमे उनकी जाति या रंगका विचार न किया जाये। तब भी बहुत सम्भव है, घूसखोरीके कुछ मामले हों। परन्तु वे विशुद्ध रूपसे ऐसे मामले होंगे जिनमें ऐसा करनेवालोंके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकेगी। एक या दो सफल मुकदमोंके बाद ऐसी घटनाओंका निश्चय ही अन्त हो जायेगा। इसके साथ ही मेरा संघ आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचता है कि अनुमतिपत्रोंके सम्बन्धमें व्यापक प्रलोभनोंके होते हुए भी ऐसी,

आपत्तिजनक कार्यवाहियाँ अपेक्षाकृत कम ही हुई हैं। यह निर्विवाद है कि युद्धसे पहले ट्रान्सवालमें १५,००० से ऊपर ब्रिटिश भारतीय वयस्क पुरुष रहते थे। आपकी पंजिकामें करीब १२,००० ही दिखाई पड़ते हैं। इसलिए यह मानना उचित होगा कि जिन व्यक्तियोंको अनुमतिपत्र मिले हैं, उनमें से अधिकतर युद्धसे पहलेके ट्रान्सवाल-निवासी हैं।

मेरा संघ सादर विश्वास करता है कि यह नियम वापस ले लिया जायेगा, और जो शरणार्थी वापस जानेकी अनुमतिकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उनकी अर्जियाँ जल्द मंजूर कर दी जायेंगी; क्योंकि, मेरे संघके पास जो जानकारी है, उसके अनुसार उन्हें बहुत बड़ी असुविधा और हानि हो रही है।

आपका, आदि,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ एल० जी० ९२/२१३२

७४. नेटालके काफिर

विलायतसे ब्रिटिश संघके[1] कुछ सदस्य आजकल दक्षिण आफ्रिका आये हुए हैं। वे सबके-सब विद्वान हैं और उन्होंने ज्ञान अर्जित किया है। दक्षिण आफ्रिकामें यह संयोग पहली ही बार आया है। कुछ दिन पहले ये लोग नेटालमें थे। तब माननीय मार्शल कैम्बेल उनको अपनी माउंट एजकम्बकी कोठीपर ले गये थे। वहाँ उन सदस्योंको दो प्रकारके अनुभव कराये। एक तो आदिवासी काफिर कैसे होते हैं, यह बताया और उनके नाच आदिका प्रदर्शन कराया। उसके बाद शिक्षित आदिवासी काफिरोंसे परिचय कराया। उन लोगोंके वरिष्ठ श्री डुबे नामके व्यक्ति हैं। उन्होंने सदस्योंके समक्ष बड़ा प्रभावशाली भाषण किया।

श्री डुबे जानने योग्य वतनी हैं। इन्होंने फीनिक्सके पास अपने परिश्रमसे तीन सौ एकड़से अधिक जमीन ली है। वहींपर ये अपने भाइयोंको स्वयं पढ़ाते हैं। ये उन्हे विविध प्रकारके उद्योग सिखाते हैं और दुनियाके संघर्षसे मोर्चा लेनेके लिए उनको तैयार करते हैं।

श्री डुबेने अपने शानदार भाषणमें बताया कि काफिरोंके प्रति जो तिरस्कारका भाव रखा जाता है वह अनुचित है। आदिवासी काफिरोंकी तुलनामें शिक्षित काफिर अधिक अच्छे हैं, क्योंकि वे लोग अधिक काम करते हैं और उनका रहन-सहन ऊँचे ढंगका होनेके कारण व्यापारियोंमें उनकी साख अधिक है। आदिवासी काफिरोंपर करका बोझ लादना अन्याय है। और ऐसा करना उसी डालको काटनेके बराबर है जिसपर हम खुद बैठे हों। गोरोंके मुकाबले आदिवासी काफिर अपना कर्तव्य अधिक अच्छी तरह समझते हैं और उसका पालन करते हैं। वे परिश्रम करते हैं, और उनके बिना गोरे एक घड़ी भी नहीं टिक पायेंगे। वे सदैव वफादार रहनेवाली प्रजा हैं और नेटाल उनकी जन्मभूमि है। दक्षिण आफ्रिकाके सिवाय उनका कोई दूसरा देश नहीं है, और उनसे जमीन आदिके अधिकार छीनना उन्हें घरसे बाहर करनेके समान है।

१. देखिए, "ब्रिटिश सघ : एक सुझाव", पृष्ठ ४९।

श्री डुबेके इस भाषणका गोरोंपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा और उन्होंने कहा कि यदि उन्हें अपने फार्ममें लोहारी या छापेखानेका काम शुरू करनेमें दिलचस्पी हो, तो वे उन्हें सहायता देंगे। ब्रिटिश संघके सदस्योंने उसी समय आपसमे ६० पौंड इकट्ठा करके श्री डुबेको दिये। माननीय श्री मार्शल कैम्बेलने भी इस समय भाषण दिया और उसमें नेटालके आदिवासी काफिरोंकी प्रशंसा की और कहा कि वे अच्छे और उपयोगी है। उनके प्रति विद्वेष रखना गलतफहमी और भूलसे भरा हुआ है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-९-१९०५

७५. काउंट टॉल्स्टॉय

ऐसा माना जाता है कि काउंट टॉल्स्टॉयके समान धुरन्धर विद्वान, फिर भी फकीरी मनोवृत्तिवाला, कोई दूसरा व्यक्ति पश्चिमके देशोमें तो नही है। उनकी आयु आज प्रायः अस्सी वर्षकी हो चुकी है, फिर भी वे बहुत स्वस्थ, परिश्रमशील एवं विचक्षण हैं।

उनका जन्म रूसके एक उच्च कुलमें हुआ है। उनके माता-पिताके पास अपार धन था। वह उन्होने विरासतमे पाया है। वे स्वय रूसके एक उमराव हैं। अपनी जवानीमें उन्होंने रूसकी बहुत अच्छी सेवा की है। क्रीमियाकी लडाईमें वे बड़ी बहादुरीसे लड़े थे। उस समय वे अन्य उमरावोंकी तरह ससारके सभी प्रकारके भोगोंका भरपूर उपभोग करते थे। वेश्याएँ रखते थे; शराब पीते थे, और तम्बाकू पीनेकी उन्हें बहुत बुरी लत थी। युद्धकालमें जब उन्होंने भारी रक्तपात देखा तब उनका मन दयासे भर गया। उनके विचार बदल गये और उन्होंने अपने धर्मका अध्ययन शुरू किया। बाइबिल पढी। ईसा मसीहके जीवनका वृतान्त पढ़नेसे उनके मनपर बहुत बडा असर हुआ। रूसी भाषामें बाइबिलका अनुवाद था। उससे उनको सन्तोष न हुआ। इसलिए उन्होंने मूल भाषाका, अर्थात् हिब्रूका, अध्ययन किया और बाइबिलकी शोध जारी रखी। उनमें लिखनेकी महान शक्ति है, इस बातका पता भी उन्हे इन्ही दिनों चला। उन्होने लड़ाईसे होनेवाले अनर्थकारी परिणामपर बडी प्रभावशाली पुस्तक लिखी। सारे यूरोपमे उसकी ख्याति फैल गई। लोगोंकी नैतिकता सुधारनेके अभिप्रायसे कई उपन्यास लिखे। इनके मुकाबलेके ग्रन्थ यूरोपकी भाषाओंमे बहुत कम माने जाते हैं। इन सब पुस्तकोंमें उन्होने इतने अधिक प्रगतिशील विचार प्रकट किये है कि उनके कारण रूसके पादरी टॉल्स्टॉयसे बिगड़ खड़े हुए। उन्हे बिरादरीसे बाहर निकाल दिया गया। इन सब बातोंकी कुछ परवाह न करते हुए उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रखा, और अपने विचारोंको फैलाना शुरू कर दिया। उनके लेखोका प्रभाव खुद उनके मनपर भी बहुत पडा। उन्होने अपनी सारी सम्पत्ति त्याग दी और गरीबी अपनायी। आज अनेक वर्षोंसे वे एक किसानकी तरह रहते है। अपने निजी परिश्रमसे जो पैदा करते हैं उसीसे अपनी गुजर-बसर करते हैं। सब व्यसन छोड़ दिये हैं, अपना खाना-पीना भी बहुत सादा रखा है, और मन, वचन अथवा कायासे ऐसा कोई काम नही करते जिससे किसी प्राणीको हानि पहुँचे। सदैव अच्छे कामोमे और ईश्वरकी स्तुति करनेमें समय बिताते है। वे यह मानते हैं कि :

१. दुनियामे मनुष्यको दौलत इकट्ठी नही करनी चाहिए।
२. दूसरा आदमी चाहे कितना भी बुरा करे फिर भी हमें उसका भला करना चाहिए, यह ईश्वरीय फरमान है, उसी प्रकार नियम भी है।

३. किसीको युद्धमें भाग नहीं लेना चाहिए।
४. राज्य-सत्ताका उपभोग करना पाप है। इससे दुनियामें अनेक दुःख उत्पन्न होते हैं।
५. [मनुष्य अपने कर्ताके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए पैदा हुआ है, इसलिए अपने स्वत्वोंकी अपेक्षा उसे अपने कर्तव्यपालनपर अधिक ध्यान देना चाहिए।]
६. मनुष्यके लिए सच्चा रोजगार खेती है और बड़े नगरोंको बसाना, उनमें लाखों मनुष्योंको यन्त्रोद्योग आदिमें लगाना और इस प्रकारके लगे हुए मनुष्योंकी गुलामी अथवा गरीबीसे लाभ उठाकर थोड़ेसे मनुष्यों द्वारा अमीरीका उपभोग किया जाना ईश्वरीय नियमके विपरीत है।

उपर्युक्त विचार बहुत प्रतिभाशाली ढंगसे विभिन्न धर्मोंसे प्रमाण ढूँढ़-ढूँढ़कर और पुराने ग्रन्थोंके आधारपर सिद्ध किये हैं। इस समय यूरोपमें टॉलस्टॉयके सुझाये नियमोंके अनुसार चलनेवाले हजारों मनुष्य बसते हैं। इन मनुष्योंने अपना सर्वस्व त्यागकर बहुत सादी जिन्दगी अपनाई है।

टॉलस्टॉय अबतक जोशीले लेख लिखा करते हैं। स्वयं रूसी होनेपर भी रूस और जापानकी लड़ाईके सम्बन्धमें उन्होंने रूसके विरुद्ध बड़े तीखे और कड़े लेख लिखे हैं। रूसके सम्राटको टॉलस्टॉयने युद्धके सम्बन्धमें बड़ा प्रभावशाली और तीखा पत्र लिखा है। स्वार्थी अधिकारी टॉलस्टॉयपर बहुत कटु दृष्टि रखते हैं, फिर भी वे और स्वयं जार भी उनसे डर कर चलते हैं, और मान देते हैं। लाखों गरीब किसान उनके कहे हुए वचनोंका पालन करते हैं, यह उनकी भलमनसाहत और ईश्वरपरायण जीवनका प्रताप है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–९–१९०५

७६. जापानकी उन्नति

संसारमें आज सबकी नजर जापानकी ओर लगी हुई है। कोई भी उस देशकी बहादुरी और चतुराईकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहता। जापानके एक भूतपूर्व प्रधानमन्त्री काउंट ओकूमाने 'नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू' में एक लेख लिखा है। उसमें बताया गया है कि इस समयके जापानकी महानता शताब्दियोंसे होते आनेवाले सुधारोंका परिणाम है। केवल शिक्षण-पद्धतिके दोषके कारण ही वह संसारकी नजरमें पिछड़ा हुआ था। जापानने समझ लिया कि विदेशियोंको अपने देशसे दूर रखना उसके वशमें नहीं है, और इसलिए उसने विचार किया कि अपनी सन्तानोंको विदेश भेजकर उन्हें वहाँकी विद्या और कला सिखाई जाये। इस काममें उसने जो स्वदेशाभिमान दिखाया उसके कारण उसकी अपनी प्रतिष्ठा कायम रही। जापानने उत्तम विदेशी शिक्षण-प्रणाली अपने देशमें जारी की। बालकों और बालिकाओंके लिए शिक्षण अनिवार्य कर दिया। साथ ही कला-कौशल और उद्योगपर भी ध्यान देनेमें वह नहीं चूका। जबतक उसके युवक पूरी तरह प्रशिक्षित होकर घर नहीं लौटे तबतक उसने विदेशी विद्वानोंको कामपर लगाये रखा।

जब पाठशालाओंकी योजना काफी जोरसे चल पड़ी तब मिकाडोने प्रत्येक स्कूलमें पढ़ानेके लिए एक आदेश प्रकाशित किया कि "तुम, हमारी प्रजा और अपने माता-पिताके प्रति भक्ति रखना; अपने भाई-बहनके प्रति स्नेहशील बनना; पति-पत्नी मेलसे रहना; अपना बरताव सरल

रखना; परमार्थ वृत्ति बढ़ाते जाना; अपने बुद्धिबल और सद्‌गुणोंका विकास करना; परोपकारके कामोसे देशकी कीर्ति बढाना; राज्यके संविधानका अनुसरण करके कानूनोका आदर करना; और अवसर आनेपर लोकसेवाके लिए मैदानमें आकर बहादुरी दिखाना।" न्यूयॉर्कमें भाषण करते हुए बैरेन कैनेकोने बताया था कि जापानकी प्रतिष्ठाकी बुनियाद यही है।

सैनिकों और नाविकोके बीच भी नीचे लिखी सात सीखे प्रचारित की गई थी :

१. खरे और वफादार बनो और असत्यसे दूर रहो।
२. अपने वरिष्ठ अधिकारीका आदर करो, साथियोंके प्रति सच्चे रहो, उद्दण्डता और अन्यायसे दूर रहो।
३. अपने अधिकारीकी आज्ञाके अधीन रहो और उसके आदेशोके प्राप्त होनेपर आना-कानी मत करो।
४. साहस और बहादुरीको ग्रहण करो और नामर्दी तथा भीरुताको त्याग दो।
५. क्रूर साहसकी प्रशंसा मत करो तथा दूसरोंका अपमान और दूसरोसे कलह मत करो।
६. सद्‌गुण तथा मितव्ययिताको अपनाओ और फिजूलखर्चीसे दूर रहो।
७. अपने गौरवकी रक्षा करो और जंगलीपन तथा कंजूसीसे अपनेको बचाये रखो।

जापानके सम्राटके इस प्रकारके आदेशोने प्रजा, सैन्य और सत्ताधिकारियोमे सद्‌गुणोका प्रसार करके उन सबको एक बनाया है और आज संसारको उसका जो बड़प्पन दिखाई देता है वह उपर्युक्त आदेशोका ही परिणाम है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–९–१९०५

७७. पत्र : शिक्षा-मन्त्रीको

डर्बन
सितम्बर ५, १९०५

सेवामें
माननीय शिक्षा-मन्त्री

महोदय,

हम, उच्चतर श्रेणी (हायर ग्रेड) भारतीय विद्यालयमें[1] अध्ययन करनेवाले भारतीय बच्चोंके माता-पिता या अभिभावक, राहत पानेके लिए सादर निम्न लिखित निवेदन करते हैं।

हमे ज्ञात हुआ है कि सरकारका इरादा डर्बनके उच्चतर श्रेणी भारतीय विद्यालयको साधारणतया रंगदार बच्चोके स्कूलमे बदल देने और बालकों और बालिकाओमे कोई भेद न रखनेका है।

हम सविनय निवेदन करते है कि इस स्कूलको समस्त रंगदार बच्चोके लिए खोल देना भारतीय समाजके प्रति अन्याय और तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री और सर अल्बर्ट हाइम व श्री रॉबर्ट रसेल द्वारा दिये गये इस आश्वासनकी अवहेलना है कि यह विद्यालय केवल भारतीय

१. देखिए, खण्ड ३, पृष्ठ १८२ और २१२।

बच्चोंके लिए सुरक्षित रखा जायेगा। इसकी स्थापना उस समय हुई थी जब सरकारने भारतीय बच्चोंको उपनिवेशके साधारण स्कूलोंमें भरती न करनेका निर्णय किया था।[1] और हम जानते हैं उस समय भी समस्त रंगदार बच्चोंके लिए एक स्कूल स्थापित करनेका प्रश्न उठाया गया था। परन्तु अच्छी तरह विचार करनेके बाद सरकारने सिर्फ भारतीय बच्चोंके लिए एक स्कूल कायम करनेका निर्णय किया। और यही कारण था कि इस स्कूलका वह नाम पड़ा जो आज है। इसके अतिरिक्त 'रंगदार बच्चे', इन शब्दोंका अर्थ इच्छानुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है। 'ब्रिटिश भारतीय', इन शब्दोंका अर्थ सभी लोग जानते हैं परन्तु 'रंगदार व्यक्ति', शब्दोंका कोई निश्चित अर्थ नहीं है। और यह देखते हुए कि सरकारने भेद करनेकी नीति अपनाई है, यह उचित ही है कि उपनिवेशके इस सबसे बड़े नगरमें ब्रिटिश भारतीयोंके लिए एक स्कूल सुरक्षित रखा जाये। शिक्षा-अधीक्षकने उस दिन कहा था कि भारतीय माता-पिता नेटालके अन्य स्थानोंमें इस प्रकारके मिश्रणपर आपत्ति नहीं करते। परन्तु हम सादर निवेदन करते हैं कि नेटालके छोटे नगरोंसे इस प्रकारकी तुलना करना कदाचित् ही उचित होगा। डर्बन एक ऐसा नगर है जिसमें स्वतन्त्र और सम्पन्न भारतीयोंकी सबसे बड़ी आबादी है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि ऐसे मामलोंमें डर्बनमें कठिनाई तीव्रताके साथ अनुभव की जाये।

जहाँतक लड़के-लड़कियोंको अलग-अलग रखनेका प्रश्न है, हम, काफी अनुभव प्राप्त तथा भारतीय भावनाओंसे परिचित माता-पिता, इतना ही कह सकते हैं कि इस निर्णयसे बहुत-सी जायज शिकायतें उत्पन्न होने वाली हैं। इस मार्गके अनुसरण किये जानेमें केवल व्यावहारिक गम्भीर आपत्तियाँ ही नहीं हैं, बल्कि बहुतसे उदाहरणोंमें धार्मिक भावनापर भी विचार करना है और हमें सन्देह नहीं कि सरकार ऐसी भावनाओंका पूरा खयाल रखेगी।

अन्तमें, हम आशा करते हैं कि उपर्युक्त दोनों मामलोंके बारेमें जो हिदायतें जारी की गई हैं वे वापस ले ली जायेंगी और जब उच्चतर श्रेणी भारतीय विद्यालयकी स्थापना हुई थी तब भारतीय समाजको जो विश्वास दिलाया गया था उसको सरकार बनाये रखेगी।

आपका, आदि,
अब्दुल कादिर
और ९९ अन्य

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१०-१९०६

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १७६।

७८. सन्धिपत्र[1]

जापानने जो शर्तें घोषित की थी उनमे से उसने दो शर्तें उदारतापूर्वक बहुत-कुछ छोड़ दी हैं। एक तो यह कि लड़ाईके खर्चके बदलेमें कुछ न लिया जाये; किन्तु रूसी कैदियोके खर्च तथा आहतोंकी सेवा-शुश्रूषाके खर्चके बदलेमें रूस केवल १२,००,००० पौंड जापानको दे; और दूसरी यह कि सखेलियन द्वीपको दोनों पक्ष आधा-आधा बाँट लें। यद्यपि रूसी जनतामें इस सन्धिपत्रसे प्रसन्नताकी लहर दौड गई है, जापानमे बड़ा असन्तोष फैला है, और उसके कम होनेके कोई लक्षण नहीं दीख रहे है। सन्धिपत्र तैयार हो जानेपर बिना ढील-ढालके उनपर हस्ताक्षर करनेके उपरान्त दोनों पक्षोके वकील अपने-अपने देश लौट जानेके लिए अधीर हो रहे हैं, ऐसा अन्तिम तारोंसे पता चलता है। जापानके राजदूत स्वदेश लौटनेपर अच्छे स्वागतकी जरा भी आशा नहीं करते, बल्कि उन्हें डर है कि जनता उनको क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-९-१९०५

७९. चीनी खान-मजदूरोंपर अत्याचार

श्री लिटिलटनसे एक संसद-सदस्यने उक्त विषयमें प्रश्न किया था। उसके उत्तरमें उन्होंने जाँच करनेका तथा कोड़े लगाना बन्द करनेका वचन दिया। चीनियोको किस प्रकार कोड़े लगाये जाते हैं, उसका वर्णन जोहानिसबर्गके 'डेली एक्सप्रेस' में दिया गया है; वह बहुत करुणाजनक है। उसमेंसे मुख्तसर हाल हम नीचे दे रहे हैं। लेखकने यह बताया है कि जो-कुछ उसने लिखा है वह या तो स्वयं अपनी आँखोसे देखा हुआ है या हजारों मनुष्योंको बेंत या कोड़े लगानेका हुक्म जिन व्यक्तियोंने दिया था, उनकी गवाहीपर आधारित है। इस वर्षके प्रारंभमें, जोहानिसबर्गकी एक खानमें औसतन बयालीस चीनियोको प्रतिदिन कोड़े लगाये जाते थे; इसमें अपवाद रविवारका भी नही है। यह सब इस प्रकार होता है: ऐसे मजदूरके विरुद्ध पहले तो उसका सरदार शिकायत करता है, फिर उसको अहातेके मैनेजरके कार्यालयमें ले जाया जाता है; वे भाई साहब अपराधके अनुसार दस, पन्द्रह अथवा बीस बेंत मारनेका हुक्म देते हैं। फिर दो चीनी सिपाही उसको करीब पन्द्रह कदम दूर ले जाते हैं। सिपाहीका हुक्म होते ही कैदी फौरन रुक जाता है। वह अपनी पतलून आदि कपड़ा उतार देता है और औधे मुँह जमीनपर लेट जाता है। एक सिपाही उस बेचारेके पैर दबा लेता है और दूसरा उसका सिर पकड़ लेता है। इसके बाद बेंत लगानेवाला आदमी तीन फुट लम्बे और तीन इंच मोटे हत्थेवाले डंडेसे, आदेशके अनुसार धीरे-धीरे अथवा जोरसे उसकी पीठपर प्रहार करता है। यदि इस बीच पीड़ा सहन न हो सकनेसे वह थोड़ा भी हिलता-डुलता है तो एक और आदमी उसे अपने पैरोंसे दबा लेता है और तब गिनती पूरी की जाती है।

१. इस सन्धिपत्रपर ५ सितम्बर १९०५को पोर्ट्समाउथ (संयुक्त राज्य अमेरिका) में हस्ताक्षर किये गये।

किसी-किसी खानमें कोड़ोंके बदले लकड़ीसे पीटा जाता है। उसकी चोटें इतनी तेज होती हैं कि उनके कारण मांस उभर आता है और चमड़ी फट जाती है। नोर्सडीपकी खानमें मैनेजर कुकके समयमें यदि कोई चीनी बरमेसे ३६ इंच गहरा छेद न कर पाता तो वह उसे सजाका हुक्म देता था। सजा देनेका उसका तरीका औरं भी क्रूर था। वह सख्त मजबूत लाठीसे काम लेनेकी आज्ञा देता था और उससे जाँघोंके पीछे जहाँ, बिलकुल ही सहन न हो ऐसे स्थलपर, चोट मारनेका हुक्म देता था; और खूनकी धार चल जानेपर भी प्रहारोंकी संख्या पूरी की जाती थी। कभी-कभी तो इतनी सख्त चोट लग जाती थी कि बेचारे चीनीको अस्पताल भेजना पड़ता था। इस दुष्ट कुककी जगह बादमें प्लेस नामका व्यक्ति नियुक्त किया गया। वह चोरोंमें शाह माना जाता था, इसलिए वह लाठीके बदले रबड़के टुकड़े काममें लेता था। कुछ समय बाद खानके अधिकारियोंने देखा कि प्रतिमास जो काम होना चाहिए वह नहीं हो रहा है, इसलिए प्लेसको अधिक सख्ती करनेका हुक्म दिया गया। प्लेसने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया और उसे त्यागपत्र देना पड़ा। इसपर लोकसभामें चर्चा होनेसे अधिकारियोंने कोड़ोंके बदले और कोई सजा देनेका निर्देश किया। इसपर प्लेसने, जिसे चीनका अनुभव था, चीनका प्रचलित रिवाज दाखिल किया। वह अपराधी चीनीको बिलकुल नंगा कर देता। फिर उसको अहातेमें खड़े झंडेके साथ उसीकी चोटीसे बँधवा देता और वहाँ, चाहे जितनी ठंड अथवा चाहे जैसी कड़ी धूप हो, दो-तीन घंटे तक खड़ा रखता। फिर वह दूसरे चीनियोंको यह आदेश देता कि वे अपराधीको दाँत दिखा-दिखा कर चिढ़ायें। दूसरा तरीका यह था कि अपराधीके बायें हाथमें एक पतली रस्सी बाँधी जाती। फिर उस रस्सीको कड़ेमें डालकर बेचारे मजदूरको इस प्रकार लटकाया जाता कि उसे केवल पैरोंकी अँगुलियोंके सिरोंके सहारे ही दो-तीन घंटे तक खड़ा रहना पड़ता था। कहीं-कहीं तो बेचारे मजदूरके हाथमें हथकड़ी डालकर जमीनसे दो फुट ऊँचे पाटसे बाँध दिया जाता था और इस तरह बिना हिले-डुले उसे दो-तीन घंटे तक रहना पड़ता था। इस प्रकारकी सजा तो ताड़से छूटकर भाड़में गिरनेके समान हुई। लोकसभामें बेंतकी मारके बारेमें चर्चा हुई तो खानोंके निर्दयी अधिकारियोंने बेंत लगाना बन्द कर दिया, किन्तु संसदमें यह कहना भुला दिया गया कि उसके बदले अधिक पीड़ा पहुँचानेवाली सजा निश्चित की गई है।

इस बातको प्रकाशमें लाकर 'डेली एक्सप्रेस' के सम्पादक श्री पेकमानने सैकड़ों चीनियोंका मूक आशीर्वाद प्राप्त किया है। यदि वह सब सच हो — और गलत माननेका कोई कारण नहीं है — तो खानके अधिकारी अपने सिरजनहारके सामने क्या जवाब दे सकेंगे? दक्षिण आफ्रिकाके गरीब मजदूरोंकी हायसे अगर वे बरबाद हो जायें तो क्या आश्चर्य? अंग्रेजोंने लड़ाई करके ट्रान्सवाल जीता, उसका प्रयोजन क्या यही था?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-९-१९०५

८०. फ्लॉरेन्स नाइटिंगेल[1]

हम पिछले एक अकमें नेक महिला एलिजाबेथ फ्राइके कार्यकलापका वर्णन कर चुके है। जिस प्रकार उसने कैदियोंकी हालतमें परिवर्तन किया और उनके लिए अपना जीवन अर्पित किया, उसी प्रकार फ्लॉरेन्स नाइटिंगेलने फौजी सैनिकोके लिए अपने प्राण दिये। सन् १८५१ में[2] जब क्रीमियाकी जबरदस्त लड़ाई हुई तब ब्रिटिश सरकार अपनी परिपाटीके अनुसार सो रही थी। कुछ भी तैयारी नही थी। और जिस प्रकार बोअर युद्धमे हुआ था उसी प्रकार क्रीमियाकी लड़ाईमें भी आरम्भमें भूलें करनेके कारण करारी हार हुई। घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेके जितने साधन आजकल है, उतने पचास वर्ष पूर्व नही थे। सहायताकार्यके लिए आज जितने मनुष्य निकल पड़ते है, उतने उस समय नही निकलते थे। शल्य-चिकित्साका जोर जितना आज है उतना उन दिनोमें नही था। घायल मनुष्योकी सेवाके लिए जानेमे पुण्य है, वह दयाका काम है, ऐसा समझनेवाले उस समय बिरले ही थे। ऐसे समय इस महिला — फ्लॉरेंस नाइटिंगेल — ने इस प्रकारके काम किये मानो वह फरिश्ता ही बनकर आई हो। सैनिक कष्टमें हैं, इस बातका पता उसे चला तो उसका हृदय विदीर्ण हो गया। वह स्वय बड़े धनी कुलकी महिला थी। वह अपना ऐश-आराम छोड़कर रोगियोकी सेवा-शुश्रूषाके लिए चल पड़ी। फिर उसके पीछे-पीछे और भी बहुत सी महिलाएँ निकली। १८५४ के अक्टूबरकी २१ तारीखको वह घरसे चली। इंकरमैनकी लड़ाईमे[3] उसने जबरदस्त मदद पहुँचाई। उस समय घायलोके लिए न बिस्तर थे, न और कुछ सुविधा ही। अकेली इस महिलाकी देखभालमे १०,००० घायल थे। जब यह महिला वहाँ पहुँची तब मृत्यु-संख्या प्रति सैकड़ा ४२ थी। इसके पहुँचते ही वह एकदम ३१ तक आ गई और अन्तमे वह संख्या प्रति सैकड़ा ५ तक आ पहुँची। यह घटना चमत्कारी है, फिर भी सहज ही समझमे आ सकती है। इन हजारो घायल मनुष्योका रक्त बहना रोका जाये, घावपर पट्टी बाँधी जाये, और आवश्यक आहार दिया जाये तो निःसन्देह जान बच सकती है। केवल दया और सेवा-शुश्रूषाकी आवश्यकता थी, जो नाइटिंगेलने पूरी कर दी। यह कहा जाता है कि बड़े और मजबूत लोग जितना काम नही कर सकते थे उतना नाइटिंगेल करती थी। वह दिन-रातमें मिलाकर २०-२० घंटे काम किया करती थी। जब उसके हाथके नीचे काम करने-वाली महिलाएँ सो जाती तब वह अकेली मध्य-रात्रिमे मोमबत्ती लेकर रोगियोकी खाटोके पास जाती, उनको आश्वासन देती और अगर कुछ खुराक वगैरह आवश्यक होती तो उन्हे अपने हाथसे देती। जहाँ लड़ाई चलती होती वहाँ जानेमें भी नाइटिंगेल डरती नही थी। खतरेको वह कुछ समझती ही नही थी। भय केवल भगवानका मानती थी। कभी-न-कभी मरना ही है, ऐसा समझकर औरोंका दु:ख कम करनेके लिए जो भी तकलीफ उठानी पडती, वह उठाती थी।

इस महिलाने कभी ब्याह नही किया। इसी प्रकारके भले कामोमें उसने अपना सारा जीवन बिताया। कहा जाता है कि जब उसकी मृत्यु हुई तब हजारों सैनिक छोटे बच्चोंके समान ऐसे फूट-फूटकर रोये मानो उनकी माँ मर गई हो।

१. (१८२०–१९१०), प्रसिद्ध परिचारिका और अस्पतालोंकी अग्रणी सुधारक।

२. वास्तवमें क्रीमियाकी लड़ाई २३ अक्तूबर १८५३ को शुरू हुई।

३. यह ५ नवम्बरको हुई।

जहाँपर ऐसी महिलाएँ पैदा होती हैं वह देश क्यों न फले-फूले। इंग्लैंड राज्य करता है, सो अपने बलके बूतेपर नहीं, बल्कि इस प्रकारके स्त्री-पुरुषोंके पुण्यबलपर।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-९-१९०५

८१. स्वर्गीय कुमारी मैनिंग[1]

'इंडिया' के ताज़ा अंकसे हमें यह शोकजनक संवाद मिला है कि राष्ट्रीय भारतीय संघ (नेशनल इंडियन असोसिएशन) की कर्मठ मन्त्री कुमारी मैनिंगका देहान्त हो गया। उस श्रेष्ठ महिलाके त्याग-पूर्ण कार्यसे ही इस संघमें जीवन आया था। जो तरुण भारतीय अध्ययनके लिए इंग्लैंड जाते थे उनकी वे सच्ची मित्र थीं और उनके स्वागतके लिए उनका द्वार सदा खुला रहता था।[2] वे उनको मार्ग प्रदर्शित करनेके लिए सदा तैयार रहती थी। उनके यहाँ जो बैठकें होती थीं वे एक वार्षिक कार्यक्रममें परिणत हो गई थी। वे बैठकें भारतीयों और आंग्ल-भारतीयोंको एक दूसरेके समीप लाती और इस प्रकार दोनोंमें पारस्परिक सद्‌भाव बढ़ाया करतीं। कुमारी मैनिंगमें दिखावा बिलकुल नहीं था। 'इंडिया' ने लिखा है कि वे सार्वजनिक प्रतिष्ठा प्राप्तिकी कोशिशें करनेकी अपेक्षा पीछे रहना अधिक पसन्द करती थीं। उनकी मृत्युसे, अध्ययन तथा अन्य कार्योंके लिए वर्ष-प्रतिवर्ष अधिकाधिक संख्यामें इंग्लैंड जानेवाले तरुण भारतीयोंकी निश्चित हानि हुई है। इनके सम्बन्धमें अधिक जानकारीके लिए हमारे पाठक हमारी लन्दनकी चिट्ठी पढ़ें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-९-१९०५

१. एलिज़ाबेथ एडेलेड मैनिंग, काउंटी अदालतके जज और विद्वान वकील जेम्स मैनिंगकी पुत्री थीं। वे फ्राबेल सोसाइटीकी मन्त्री और गर्टन कॉलेज, कैम्ब्रिजके संस्थापकोंमें से थीं। वे १८७७ में राष्ट्रीय भारतीय संघकी अवैतनिक मन्त्री चुनी गईं और १० अगस्त १९०५ तक, जब वे ७७ वर्षकी आयु पाकर मृत्युको प्राप्त हुईं, उस पदपर बनी रहीं। वे इंडियन मैगजीन ऐंड रिव्यूका सम्पादन करती थीं और भारतके समस्त सामाजिक आन्दोलनोंमें भाग लेती थीं।

२. प्रतीत होता है गांधीजी जब इंग्लैंडमें कानूनके अध्ययनके लिए गये थे, तब उनके घर प्रायः आते-जाते थे। देखिए, आत्मकथा भाग १, अध्याय २२।

८२. आगामी कांग्रेसका अध्यक्ष कौन ?

'इंडिया' में खबर प्रकाशित हुई है[1] कि आगामी काग्रेसके अध्यक्षके चुनावके लिए निम्नलिखित नाम सुने जा रहे हैं : माननीय श्री गोपालकृष्ण गोखले, श्री अरडली नॉर्टन[2], राव बहादुर मुधोलकर[3], सर गुरुदास बनर्जी[4], डॉ० रासबिहारी घोष[5] और बाबू कालीचरण बनर्जी[6]। ये सभी सज्जन बहुत योग्य हैं और इन्होंने भारतकी बड़ी सेवाएँ की हैं। उनमें भी श्री गोखलेका नाम आजकल तो सबसे आगे है। बड़ी लोकसभामें उन्होंने लॉर्ड कर्जनसे बहुत अच्छी टक्कर ली है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–९–१९०५

८३. बड़ौदाके महाराजा गायकवाड़ और उनके दीवान

महाराजा गायकवाड़ने श्री दत्तको[7] अपना दीवान नियुक्त किया है। यह कर्जन साहबको पसन्द नही आया। 'बंगाली' में दी गई खबरसे मालूम होता है कि इसलिए उन्होंने भारतके हर राजाके पास इस आशयका गुप्त परिपत्र भेजा है कि यदि भविष्यमें नौकरीसे इस्तीफा देनेवाले इंडियन सिविल सर्विसके व्यक्तिको कोई अपने यहाँ नियुक्त करनेका इरादा करे तो वह उसकी नियुक्तिसे पूर्व सरकारसे अनुमति ले। यह लॉर्ड कर्जनकी आखिरी लड़ाइयोंमें से एक जान पड़ती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–९–१९०५

१. जैसी मद्रास मेलमें दी गई थी।

२. मद्रासके एक बैरिस्टर और लोकसेवक।

३. पीछे १९१२ में कांग्रेसके बांकीपुर अधिवेशनके अध्यक्ष बने। मूलमें अकोलकर दिया गया है।

४. भूतपूर्व न्यायाधीश और बंग जातीय विद्या-परिषदके अध्यक्ष।

५. सन् १९०८ में मद्रासके कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष हुए।

६. एक भारतीय ईसाई, जो कांग्रेसके कार्योंमें बहुत दिलचस्पी लेते थे।

७. श्री रमेशचन्द्र दत्त (१८४८–१९०९): भारतीय नागरिक सेवा (इंडियन सिविल सर्विस) के सदस्य, भारतकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यताके सूक्ष्म अध्येता और **इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया सिन्स द एडवेन्ट आफ द ईस्ट इंडिया कम्पनी**के लेखक। १८९९ की लखनऊ कांग्रेसके अध्यक्ष हुए और अपने जीवनके अन्तिम पाँच वर्षोंमें बड़ौदाके राजकाजसे सम्बद्ध रहे। पहले मालमंत्री बने और बादमें दीवान। देखिये, खण्ड ४, पृष्ठ ४८७।

८४. ब्रिटिश मध्य आफ्रिकाके सम्बन्धमें समाचार

परिश्रमी लोगोंके लिए बढ़िया अवसर

ब्रिटिश मध्य आफ्रिकामें रेलकी पटरी बिछानेका काम चल रहा है। हमें खबर मिली है कि वहाँ मजदूरोंकी जरूरत है। इस सम्बन्धमें हम और भी जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। तबतक जो लोग उधर जाना चाहते हों वे अपने नाम और पते साफ अक्षरोंमें लिखकर हमारे पास भेज दें। हम उनकी सूची बना लेंगे और यदि हमें वहाँकी परिस्थिति जानेके लिए अनुकूल जान पड़ेगी तो इस समाचारपत्रमें खबर दे देंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–९–१९०५

८५. इटलीमें भूकम्प

कुछ दिन पहले इटलीके कैलेब्रिया[1] नामक स्थानमें एक भारी भूचाल आया था। उससे हजारों लोग बेघर-बार हो गये हैं और मददके लिए करुण पुकार कर रहे हैं। इटलीके राजाने चार हजार पौंड सहायतामें दिये हैं। पारगेली नामक स्थानमें तीन सौ, गेपलोमें दो सौ और मार-टेरेनोके पास दो हजार लोग मरे या सख्त घायल हुए हैं। भूचालके इस बड़े धक्केके दो-तीन दिन बाद, और एक साधारण-सा धक्का आया था। लोग घबराकर इधर-उधर भाग रहे हैं, और कुछ तो देश छोड़कर चले जा रहे हैं। मरे और घायल हुए लोगोंकी संख्या पाँच हजार कूती जाती है। १८५७ में जब विस्तृत क्षेत्रमें भूकम्पके धक्के लगे थे तब लगभग दस हजार लोगोंकी प्राणहानि हुई थी। कैलेब्रियापर इस प्रकारके संकट बहुत अर्सेसे पड़ते चले आ रहे है। १८५७से ७५ वर्ष पहलेकी अवधिमें कुल मिलाकर एक लाख ग्यारह हजार लोगोंकी प्राणहानि हुई जिसकी औसत लगानेपर कहा जा सकता है कि प्रतिवर्ष पन्द्रह सौ लोगोंका विनाश हुआ। पिछले पचास वर्षोंमें कैलेब्रियामें अनेक बार भूचाल आ चुके है; परन्तु उनमें ऐसा विनाशकारी भूचाल एक भी न था। बहुत-से गाँव नष्ट हो गये हैं और प्रायः एक लाख लोग बेघर हो गये है। वहाँकी सरकार उन्हें सहायता पहुँचानेकी भरसक कोशिश कर रही है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–९–१९०५

१. सुदूर दक्षिण पश्चिमी इटलीका पहाड़ी क्षेत्र।

८६. चीनी और भारतीय: एक तुलना[1]

जोहानिसबर्गमें बहुत-से चीनी रहते हैं। यह नही कहा जा सकता कि उनकी माली हालत भारतीयोंकी अपेक्षा अच्छी है। उनमेंसे अधिकतर तो कारीगर हैं। मुझे उनका रहन-सहन देखनेका अवसर कुछ दिन पहले मिला था। उसे देखकर और उससे अपने लोगोके रहन-सहनकी तुलना करके मुझे खेद हुआ।

उन लोगोंने सार्वजनिक कामके लिए चीनी संघकी स्थापना की है। उसके लिए उनके पास एक बड़ा हाल है। उस हालको साफ-सुथरा और सुन्दर रखा जाता है। वह पक्की ईंटोंका बना हुआ है। वे लोग इसका खर्च, एक बड़ी किरायेकी जमीनको दुबारा किरायेपर उठाकर निकालते हैं। चीनियोके लिए रहने आदिकी सुविधा न होनेके कारण उन्होंने 'कैंटनी क्लब' कायम किया है। वह मिलनेकी जगहका, रहनेकी जगहका तथा पुस्तकालयका काम देता है। इस क्लबके लिए उन्होंने लम्बे पट्टेपर जमीन ली है और उसपर एक पक्का दुमंजिला मकान बनाया है। इसमें सब लोग बड़ी स्वच्छतासे रहते हैं। वे जगहका लोभ नही करते। और बाहरसे तथा भीतरसे देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई बढ़िया यूरोपीय क्लब हो। उसमें बैठनेका कमरा, भोजनका कमरा, सभा करनेका कमरा, कमेटीका कमरा, मन्त्रीका कमरा और पुस्तकालयका कमरा इत्यादि जुदा-जुदा रखे गये हैं जिनका वे दूसरे कामोके लिए उपयोग नही करते। इन कमरोसे लगे हुए जो कमरे है, वे सोनेके लिए किरायेपर दिये जाते हैं। वह जगह ऐसी साफ और अच्छी है कि कोई भी आगन्तुक चीनी सज्जन वहाँ टिकाया जा सकता है। उन्होंने क्लबका प्रवेश-शुल्क ५ पौंड रखा है और वार्षिक शुल्क व्यक्तिके रोजगारके अनुसार होता है। इस क्लबमें लगभग १५० सदस्य हैं। वे हर रविवारको मिलते हैं और वहाँ खेलते-कूदते हैं। अन्य दिनोंमें भी सदस्य उसका उपयोग कर सकते हैं।

हम लोग ऐसी कोई भी संस्था नही दिखा सकते। किसी भी अजनबी भारतीयके ठहरने योग्य स्वतन्त्र जगह सारे दक्षिण आफ्रिकाके किसी शहरमें नही है। हमारी मेहमानदारी अवश्य अच्छी है, फिर भी वह सीमित होती है। अगर एक क्लब जैसी कोई जगह हो तो उसके कई अच्छे उपयोग किये जा सकते है। [एक-दूसरेके घर अपना समय बितानेके बदले लोग यदि सार्वजनिक स्थानपर समय बिता सकें तो उससे बहुत लाभ होता है।] किसी एक व्यक्तिके ऊपर बोझ नहीं पड़ता। मैत्री-सम्बन्ध बढ़ सकता है और इससे हमारी प्रतिष्ठामें वृद्धि होती है। स्वच्छता-सम्बन्धी नियमोंका भी पालन किया जा सकता है। यह काम बहुत कम खर्चमें किया जा सकता है और यह आवश्यक है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

चीनियोंने जो क्लब स्थापित किया है वह बिलकुल ही सबक लेने योग्य और अनुकरणीय है। हमपर गन्देपनका जो आरोप है, वह बिलकुल अकारण नही है। इस प्रकारके क्लबकी स्थापना करना उस आरोपको मिटानेका एक अच्छा उपाय है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–९–१९०५

१. यह "हमारे जोहानिसबर्ग-संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें छपा था।

८७. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

हम इन स्तंभोंमें यूरोपके कुछ अच्छे स्त्री-पुरुषोंके जीवन वृत्तान्त संक्षेपमें छाप चुके है। इन जीवन वृत्तान्तोंको छापनेमें हमारा उद्देश्य यह है कि इनसे हमारे पाठकोंका ज्ञान बढ़े और वे अपने जीवनमें उनके उदाहरणोंका अनुकरण करके उसे सार्थक बनायें।

बंगालमें विलायती मालके बहिष्कारका जो जोरदार आन्दोलन चल रहा है वह मामूली नहीं है। बंगालमें शिक्षा बहुत है और लोग बहुत ही चतुर हैं, इसलिए वहाँ ऐसा आन्दोलन हो सका है। सर हेनरी कॉटन कह चुके हैं कि बंगाल कलकत्तासे पेशावर तक शासन चलाता है। इसका कारण जाननेकी जरूरत है।

यह निश्चित है कि प्रत्येक जातिकी उन्नति और अवनति उसके महापुरुषोंपर अवलम्बित है। जिस जातिमें अच्छे लोग पैदा होते हैं उसपर उन लोगोंका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। बंगालमें जो विशेषता दिखाई देती है उसके कारण कई हैं। किन्तु उनमें एक मुख्य कारण यह है कि बंगालमें पिछली शताब्दीमें बहुत महापुरुष उत्पन्न हुए। राममोहन रायके[1] बाद वहाँ वीर पुरुषोंकी एक परम्परा आरम्भ हुई जिससे दूसरे प्रान्तोंके मुकाबले बंगालकी स्थिति बहुत अच्छी हो गई। यह कहा जा सकता है कि इन लोगोंमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महानतम थे। 'विद्यासागर' ईश्वरचन्द्रकी उपाधि थी। उनका संस्कृत भाषाका ज्ञान इतना ऊँचा था कि कलकत्तेके विद्वानोंने उसीके कारण उनको "विद्याके सागर" की उपाधि प्रदान की। परन्तु ईश्वरचन्द्र केवल विद्याके ही सागर नहीं थे, बल्कि दया, उदारता, और अन्य अनेक सद्गुणोंके सागर भी थे। वे हिन्दू थे और हिन्दुओंमें भी ब्राह्मण। परन्तु उनके मनमें ब्राह्मण और शूद्र तथा हिन्दू और मुसलमान समान थे। वे जो भी अच्छा काम करते थे, उसमें ऊँच और नीचका भेद नहीं करते थे। उनके प्राध्यापकको हैजा हुआ तो उन्होंने खुद सेवा-शुश्रूषा की। प्राध्यापक गरीब थे, इसलिए वे उनके लिए अपने खर्चसे ही डॉक्टर लाये और उनका मल-मूत्र भी उन्होंने खुद ही उठाया।

वे चन्द्रनगरमें अपने रुपयेसे कुलची[2] और दही खरीदकर गरीब मुसलमानोंको जिमाते और जिनको पैसेकी मददकी जरूरत होती उनको पैसा भी देते थे। रास्तेमें कोई अपंग या दुःखी मनुष्य मिलता तो उसको अपने घर ले जाकर उसकी सार-सँभाल खुद करते थे। वे पराये दुःखमें दुःख और पराये सुखमें सुख मानते थे।

उनका अपना जीवन अत्यन्त सीधा-सादा था। शरीरपर मोटी धोती, ओढ़नेकी वैसी ही मोटी चद्दर और स्लिपर — यह थी उनकी पोशाक। वे ऐसी पोशाक पहनकर ही गवर्नरोंसे मिलते और उसीको पहनकर गरीबोंकी आवभगत करते। यह व्यक्ति सचमुच एक फकीर, संन्यासी या योगी था। इसके जीवनपर विचार करना हमारे लिए बहुत ही उचित होगा।

ईश्वरचन्द्र मिदनापुर तालुकेके एक छोटेसे गाँवमें गरीब माँ-बापके घर पैदा हुए थे। उनकी माँ बड़ी साध्वी थीं और उनको बहुतसे गुण अपनी माँ से ही मिले थे। उन दिनों भी उनके पिता थोड़ी अंग्रेजी जानते थे। उन्होंने अपने पुत्रको अंग्रेजीकी उच्च शिक्षा दिलानेका निश्चय किया। ईश्वरचन्द्रका विद्यारम्भ पाँच वर्षकी आयुमें हुआ और आठ वर्षकी आयुमें उन्हें अध्ययनके लिए

१. (१७७४–१८३३) भारतके महान धर्म सुधारक, ब्रह्मसमाजकी स्थापना की, सती प्रथाका उन्मूलन करवाया, और भारतमें शिक्षा-प्रचारके लिए कठिन परिश्रम किया।

२. कुल्ची : एक प्रकारकी खमीरी या पाव रोटी।

साठ मील दूर पैदल कलकत्ता जाना पड़ा और वे वहाँ संस्कृत कालेजमें भर्ती हो गये। उनकी स्मरणशक्ति ऐसी अद्‌भुत थी कि उन्होंने यात्रामें मीलके अंकोंको देख-देखकर अंग्रेजी अंक सीख लिये थे। सोलह वर्षकी आयु तक वे संस्कृतका बहुत अच्छा अध्ययन कर चुके थे और संस्कृतके अध्यापक नियुक्त कर दिये गये थे। वे एक-एक सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते अन्तमें उसी कॉलेजके आचार्यके पदपर जा पहुँचे जिसमें वे पढ़े थे। सरकार उनका अत्यन्त आदर करती थी। परन्तु स्वतन्त्र स्वभावके होनेसे उनको शिक्षा-विभागके निदेशककी बात सहन नहीं हो सकी; इसलिए उन्होंने इस्तीफा दे दिया। बंगालके लेफ्टिनेंट गवर्नर सर फ्रेड्रिक हैलीडेने उनको बुलाया और कहा कि वे अपना इस्तीफा वापस ले लें; किन्तु ईश्वरचन्द्रने उसको वापस लेनेसे साफ इनकार कर दिया।

इस प्रकार नौकरी छोड़नेके बाद ईश्वरचन्द्रकी महानता और मानवता अच्छी तरह विकसित हुई। उन्होने देखा कि बंगला बहुत अच्छी भाषा है; किन्तु उसमें नई रचनाएँ नहीं हैं; इसलिए वह निर्धन लगती है। अत: उन्होंने बंगला पुस्तकोंकी रचना शुरू की। उन्होने बहुत अच्छी पुस्तकें लिखी है। आज बंगला भाषा समस्त भारतमें विकसित हो रही है और उसका बहुत विस्तार हो गया है। इसका मुख्य कारण विद्यासागर ही है।

परन्तु उन्होने देखा कि पुस्तकें लिखना ही काफी नहीं है। इसलिए उन्होंने स्कूल खोले। कलकत्तेका मैट्रोपॉलिटन कॉलेज विद्यासागरका ही स्थापित किया हुआ है और उसको भारतीय ही चलाते है।

जिस प्रकार ऊँची शिक्षा जरूरी है, उसी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा भी। इसी कारण उन्होंने गरीबोंके लिए प्रारम्भिक शालाएँ स्थापित कीं। यह काम बहुत बड़ा था। उनको इसमें सरकारकी सहायताकी जरूरत थी। लेफ्टिनेंट गवर्नरने कहा कि इसका खर्च सरकार देगी। वाइसराय लॉर्ड ऐलनबरो[1] इसके विरुद्ध थे। इस कारण विद्यासागरने जो खर्चका चिट्ठा पेश किया वह मंजूर नही किया गया। लेफ्टिनेंट गवर्नर बहुत दु:खित हुए और उन्होंने ईश्वरचन्द्रको सूचित किया कि वे उनपर दावा कर दें। वीर ईश्वरचन्द्रने जवाब दिया: "साहब! मै अपने लिए इन्साफ हासिल करनेके उद्देश्यसे कभी अदालत नही गया। तब मैं आपके ऊपर दावा करूँ, यह कैसे हो सकता है।" उस समय दूसरे अंग्रेज ईश्वरचन्द्रकी मदद किया करते थे और उन्होंने उनको रुपये-पैसेकी अच्छी सहायता दी। वे खुद बहुत मालदार नही थे, इसलिए दूसरोंका दु:ख दूर करनेकी खातिर वे बहुत बार खुद कर्जदार हो जाते थे। फिर भी उन्होने अपने लिए सार्वजनिक चन्दा करनेकी बात स्वीकार नहीं की।

उनको ऊँची शिक्षा और प्रारम्भिक शिक्षाकी मजबूत नींव रखकर सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि स्त्री-शिक्षाके अभावमें लड़कोंको शिक्षा देना ही काफी नहीं है। उन्होने मनु-स्मृतिमें से ढूँढ़कर एक श्लोक निकाला जिसका आशय था कि स्त्रियोंको शिक्षा देना कर्त्तव्य है। उसका उपयोग करके उन्होंने उनके लिए पुस्तकें लिखीं और बेथ्युन साहबके सहयोगसे स्त्रियोंकी शिक्षाके लिए बेथ्युन कॉलेजकी स्थापना की। परन्तु कॉलेजकी स्थापनाकी अपेक्षा उसमें स्त्रियोंको लाना ज्यादा कठिन था। वे स्वयं साधु-जीवन व्यतीत करते थे और महान् विद्वान थे। इस कारण सभी लोग उनका बहुत सम्मान करते थे। इसलिए उन्होंने प्रतिष्ठित लोगोंसे भेंट की और उनको अपनी लड़कियाँ कॉलेजमें भेजनेके लिए समझाया। इससे बड़े लोगोंकी लड़कियाँ पढ़नेके लिए आने लगी। आज इस कॉलेजमें बहुत-सी ऐसी प्रतिष्ठित, बुद्धिमती और सुशील स्त्रियाँ है, जो इसकी व्यवस्था भी चला सकती है।

१. १८४२-४४ में भारतके गवर्नर-जनरल।

किन्तु इतनेसे उनको सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने उसके अन्तर्गत छोटी लड़कियोंकी प्रारम्भिक शिक्षाके लिए शालाएँ खोली। उनमें लड़कियोंको कपड़े-लत्ते, खाने-पीनेकी चीजें और पुस्तकें तक दी। फलस्वरूप आज कलकत्तामें हजारों विदुषी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं।

शिक्षकोंकी भी कमी थी। उसकी पूर्तिके लिए उन्होंने स्वयं शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय शुरू किये।

उन्होंने हिन्दू विधवाओंकी दयनीय स्थिति देखकर विधवा-विवाहका उपदेश शुरू किया। उसके लिए पुस्तकें लिखी और भाषण दिये। बंगाली ब्राह्मणोंने उनका विरोध किया; किन्तु उन्होंने उनकी परवाह नहीं की। लोग उनको मारनेके लिए खड़े हो गये; किन्तु उन्होंने अपने प्राणोंका भय नही किया। उन्होने सरकारसे विधवा-विवाहकी वैधताका कानून बनवाया। उन्होंने बहुत लोगोंको समझाया और प्रतिष्ठित लोगोंकी बाल-विधवा पुत्रियोंके विवाह कराये। अपने पुत्रको भी एक गरीब विधवा लड़कीसे विवाह करनेकी प्रेरणा दी।

कुलीन ब्राह्मण अनेक स्त्रियोसे विवाह कर लेते थे। उनको २०–२० स्त्रियोंसे विवाह करनेमें भी शर्म न आती। ऐसी स्त्रियोंके दुःखको देखकर ईश्वरचन्द्र रोया करते। उन्होंने इस कुप्रथाको बन्द करानेके लिए जीवन-भर उद्योग किया।

बर्दवानमें मलेरिया रोगसे हजारों गरीब पीड़ित होते देखे। उन्होंने अपने खर्चसे एक डॉक्टर रखा। वे उन लोगोंको खुद जाकर दवाएँ बाँटते और गरीबोंको घरोंमें जा-जा कर मदद पहुँचाते। उन्होंने इस तरह दो वर्ष तक सतत मेहनत की और सरकारकी मदद लेकर दूसरे डॉक्टर बुलाये।

यह सेवा-कार्य करते हुए उन्होंने औषधि-ज्ञानकी आवश्यकता अनुभव की। इसलिए होमियोपैथीका अभ्यास किया और उसमें कुशलता प्राप्त की। उसके बाद वे खुद ही दवा दे देते थे। गरीबोंकी मदद करनेके लिए लम्बे रास्ते तय करने पड़ते तो उन्हें कोई परवाह न होती थी।

वे बड़े-बड़े राजाओंके संकट दूर करनेमें भी उतने ही समर्थ थे। किसी राजाके साथ अन्याय होता अथवा उसपर गरीबी आ जाती तो वे अपने प्रभाव, ज्ञान और धनसे उसका संकट दूर करते थे।

इस प्रकारका जीवन व्यतीत करते हुए विद्यासागर सत्तर वर्षकी आयुमें सन् १८९० में चल बसे। दुनियामें इस प्रकारके लोग कम ही हुए हैं। कहा जाता है कि यदि ईश्वरचन्द्र किसी यूरोपीय राष्ट्रमें उत्पन्न हुए होते तो इंग्लैंडके लोगोंने नेल्सनका जैसा महान स्मारक खड़ा किया है वैसा ही स्मारक ईश्वरचन्द्रकी मृत्युके पश्चात् खड़ा किया जाता। किन्तु ईश्वरचन्द्रका स्मारक आज बंगालके छोटे और बड़े, गरीब और अमीर सभी लोगोंके हृदयोंमें स्थापित है।

अब हम समझ सकते है कि बंगाल किस प्रकार भारतके अन्य भागोंको अपने उदाहरणसे शिक्षा दे सकता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–९–१९०५

८८. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके निजी सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

बॉक्स नं० ६५२२
जोहानिसबर्ग
सितम्बर १८, १९०५

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

मुझे आपके इसी १३ तारीखके पत्र, क्रमांक एलजी० ९७/३, की पहुँच स्वीकार करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमें आपने मुख्य अनुमतिपत्र सचिवको[1] लिखे गये मेरे पहली सितम्बरके पत्रके बारेमें कुछ पूछताछ की है।

बीच-बीचमें कुछ दिनोंको छोड़कर इस पत्रका लेखक १८८३ से उपनिवेशमे रहा है और यहाँके भारतीय समाजसे उसका घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। उसका प्रतिनिधित्व करनेका सौभाग्य प्राप्त करते हुए उसे अब बारह वर्षसे भी अधिक हो गये हैं। इसलिए, युद्धके पहले ट्रान्सवालमें १५,००० से अधिक ब्रिटिश भारतीय वयस्क पुरुष थे, इस वक्तव्यके समर्थनमे पहले सबूतके रूपमें लेखकका अपना अनुभव सेवामें प्रस्तुत है।

आगे मेरा संघ निम्नलिखित बातें इस वक्तव्यके समर्थनमें पेश करता है:

१. सन् १८९९ में तत्कालीन ब्रिटिश एजेंटने महामहिमकी सरकारको एक प्रतिवेदन पेश किया था जिसमे ब्रिटिश जनसंख्याके बारेमें मोटे आँकड़े दिये गये थे। ये आँकड़े समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुए थे। जहाँतक लेखकको याद है, उसमें ब्रिटिश भारतीयोंकी सख्या १५,००० दी गई थी।

२. सन् १८९५ में ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंने महामहिमके उपनिवेश-मन्त्रीकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया था। वह दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंसे सम्बन्धित सरकारी रिपोर्टमें प्रकाशित हुआ है। उस समय ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी आबादीका जो मोटा अन्दाज दिया गया था उसके मुताबिक तब कमसे-कम ५,००० भारतीय वयस्क पुरुष थे। किन्तु सन् १८९५ और १८९९ के बीचमें जो दक्षिण आफ्रिकामें रहे है वे जानते है कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी संख्यामें सर्वाधिक वृद्धि इसी अवधिमें हुई। यह वृद्धि इतनी भयजनक मानी गई कि आजके कुछ भारतीय-विरोधी आन्दोलनकारियोंने भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगरसे कार्रवाई करनेकी प्रार्थना की; किन्तु जहाँतक भारतीय प्रवासका सम्बन्ध है, सौभाग्यसे भूतपूर्व

१. देखिए, "पत्र : मुख्य अनुमतिपत्र सचिवको", पृष्ठ ५७।

राष्ट्रपतिने उनके सुझावोंपर कान नहीं दिया। सन् १८९६ में भारतमें प्लेग फैला और उसके बाद लगातार दो असाधारण अकाल पड़े। उस समय भारतसे इतना बड़ा प्रव्रजन हुआ जितना लोगोंकी जानकारीमें पहले कभी न हुआ था। बम्बई और दक्षिण आफ्रिकाके बन्दरगाहोंके बीच 'कूरलैंड', 'नादरी', 'हुसैनी', और 'क्रीसेंट' नामके जहाज विशेष रूपसे चलाये गये और इनपर एक-एक बारमें चार-चार सौसे भी ज्यादा दक्षिण आफ्रिका जानेवाले भारतीय सवार हुए। तब सभीको मालूम था कि इन लोगोंमें से ज्यादातर ट्रान्सवालमें दाखिल हुए।

३. सन् १८९७ के शुरूमें नेटाल प्रवासी-अधिनियम पास हुआ। सन् १८९६ के दिसम्बर महीनेमें 'नादरी' और 'कूरलैंड'से सम्बन्धित डर्बन-प्रदर्शन[1] हुआ। ये जहाज कुल मिलाकर ८०० से अधिक यात्री लेकर आये थे जिनमें से ५०० यात्री उसी महीनेमें ट्रान्सवाल चले गये। इनमें से एक-एक जहाजने हर साल चार-चार खेवे किये। एक-एक खेवेमें इनपर, अधिवासी भारतीयोंके अतिरिक्त, तीन-तीन सौ यात्री भी आये हों तो सिर्फ चार जहाजोंसे भारतीयोंकी संख्यामें ४,८०० की वार्षिक अभिवृद्धि हुई होगी। किंग्सलाइन और ब्रिटिश इंडियन स्टीम नेवीगेशन कम्पनीके जहाज भारतके दूसरे हिस्सोंसे जिन लोगोंको लाये, सो अलग। इन जहाजोंमें से हर एकपर आनेवाले यात्रियोंकी तादादकी सचाई जहाजी कम्पनियों या नेटालके बन्दरगाह-अधिकारियोंसे पूछ कर जाँची जा सकती है।

लेखकके इस मतका अनुमोदन उन दूसरे ब्रिटिश भारतीयोंके मतसे भी होता है जो कि ट्रान्सवालके पुराने निवासी हैं।

४. हम जिसे भारतीय-विरोधी दल कह सकते हैं, उसके सार्वजनिक वक्तव्योंको यदि विरोधी मतके रूपमें पेश किया जाये तो उनमें जो-कुछ कहा गया है, उसपर संयम रखकर बात करना बहुत कठिन है। उस दलके लोगोंने जितने दोषारोपण किये हैं उनमें से हर एककी सचाईको बार-बार चुनौती दी गई है और वे गलत साबित भी किये जा चुके हैं। और इसके बाद भी वे उन्हें दुहराते रहने और ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ लोगोंको भड़काते रहनेसे नहीं झिझके हैं। हम इसके केवल तीन उदाहरण लें। उन्होंने युद्धसे पहले और युद्धके बाद पीटर्सबर्गमें व्यापार करनेवालोंकी संख्याके कुछ आँकड़े दिये थे। इन दोनों आँकड़ोंको चुनौती दी गई है। युद्धसे पहले व्यापार करनेवालोंके नाम पेश कर दिये गये हैं; फिर भी पहला ही वक्तव्य दुहराया गया है। उन्होंने कहा है कि भारतीय युद्धसे पहले ट्रान्सवालमें आये हों और उन्हें अपने नाम दर्ज न कराने पड़े हों, यह असम्भव है। मेरे संघको यह कहनेमें कोई हिचक नहीं है कि इस कथनमें सचाई नहीं है। इस देशमें जो लोग दाखिल हुए, उनमें से सचमुच मुश्किलसे एक तिहाई लोग दर्ज किये गये। ये केवल वे लोग थे जिन्हें व्यापारके लिए परवाने लेने पड़े थे। फिर इनमें इनके साझेदार अवश्य ही शामिल नहीं थे। मेरा संघ इस बातके असंदिग्ध प्रमाण दे सकता है कि युद्धसे पहले ट्रान्सवालमें ऐसे ब्रिटिश भारतीय थे जिन्होंने कभी पंजीयन शुल्क नहीं दिया। उनमें कई जाने-माने लोग हैं जिनकी शिनाख्त गण्यमान्य यूरोपीय व्यापारियोंसे करायी जा सकती है।

१. देखिए, खण्ड २, पृष्ठ १६६।

उनका तीसरा वक्तव्य भारतीयोंके बड़ी संख्यामें नेटालसे पॉचेफस्ट्रूम आनेके बारेमें है। जिन्होंने यह वक्तव्य दिया है वे कुछ भी नहीं जानते कि नेटालमें गिरमिटिया मजदूरोंसे सम्बन्धित कानून किस तरह लागू किया जाता है, और फिर भी इस आशयका वक्तव्य दिया गया है कि पॉचेफस्ट्रूममे जो लोग बड़ी संख्यामें आये हैं वे इसी वर्गके है। जहाँतक मेरे संघको मालूम है, भारतीय-विरोधियोने जो बहुत-से वक्तव्य दिये है, उन्हे सिद्ध करने योग्य कोई प्रमाण देनेमें वे अभीतक सफल नहीं हुए। और सबसे बड़ी बात, जिसपर उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया, यह है कि युद्धसे पहले जोहानिसबर्गमें ही सबसे ज्यादा भारतीय रहते थे, और जोहानिसबर्गसे ही वे उपनिवेशके दूसरे हिस्सोंमें फैले है। जहाँतक भारतीयोंका सम्बन्ध है, युद्धसे पहले जोहानिसबर्गका व्यापार, चूंकि डच और वतनियोंके हाथमें था, बहुत ही अच्छा था। लेकिन आज डच और वतनी दोनोंका व्यापार बहुत बुरी हालतमें है। इसका नतीजा यह हुआ है कि जिन व्यापारियोंके लिए ट्रान्सवालमें अपनी जीविका चलाना असम्भव हो गया था वे अब ट्रान्सवालके दूसरे हिस्सोंमें जा बसे है। जोहानिसबर्गकी बस्ती बहुत-से भारतीय जमींदारोंका अवलम्ब थी। ये लोग न केवल निर्धन बना दिये गये है बल्कि इन्हें जोहानिसबर्ग छोड़कर उपनिवेशके दूसरे हिस्सोमें जानेपर मजबूर किया गया है। यदि जोहानिसबर्गकी हालत पहले जैसी हो जाये, और ब्रिटिश भारतीयोंको युद्धके पहले जमीनकी मिल्कियतके बारेमें जो संरक्षण प्राप्त था उसका फिरसे आश्वासन मिल जाये, तो जो भारतीय आबादी उपनिवेशमें इधर-उधर फैल गई है, वह सब जोहानिसबर्गमें आ जायेगी और भारतीय-विरोधी लोगोंको यह जानकर सन्तोष होगा कि बहुत-से नगर भारतीय-विहीन हो गये हैं।

इस बयानमें जो-कुछ भी कहा गया है उसके एक-एक शब्दको प्रमाणित करनेके लिए जाँच की जाये तो मेरे संघको सबूत देनेमें खुशी होगी। चूंकि मुख्य अनुमतिपत्र सचिवने मेरा १ सितम्बरका पत्र परमश्रेष्ठके पास निर्देशके हेतु भेजा है, इसलिए क्या मै यह आशा कर सकता हूँ कि यूरोपीयों द्वारा उल्लिखित जिन नियमोंको मेरे संघने असाध्य माना है, उन्हें अविलम्ब वापस ले लिया जायेगा? ब्रिटिश भारतीयोके सम्बन्धमें तरह-तरहके निराधार वक्तव्य पेश किये जानेसे निर्दोष और ईमानदार आदमियोंको बिना अपराध, असुविधा और हानि उठानी पड़ती है। वे जब पराये झंडेके नीचे थे तब भी उन्हें ऐसी कठिनाइयाँ नहीं झेलनी पड़ी थीं।

आपका, आदि,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ : एल० जी० ९२/२१३२, पत्र संख्या ५०४

८९. हुंडामलके मामलेकी फिर चर्चा[1]

सर्वोच्च न्यायालयको नेटालके विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत उठाये गये एक मुद्देपर फैसला देनेका एक दूसरा अवसर मिला था। इस बार डर्बन नगर-परिषदके उस फैसलेपर पुनर्विचार किया गया था जो कुछ समय पूर्व इन स्तम्भोंमें प्रकाशित किया जा चुका है। परवाना-अधिकारीने हुंडामलके परवानेका ग्रे स्ट्रीटसे वेस्ट स्ट्रीट स्थानान्तरण दर्ज करनेसे इनकार कर दिया था और परिषदने उसके इस निर्णयको पुष्ट किया था। विद्वान मुख्य न्यायाधीशने जो फैसला दिया है वह अत्यन्त निराशाजनक है। वह कानूनके अनुसार हो सकता है, परन्तु न्याय या औचित्यसे निःसन्देह मेल नहीं खाता। इसका प्रत्यक्ष उत्तर यह है कि न्यायाधीशोंका काम कानूनकी व्याख्या करना है, कानून बनाना नहीं। परन्तु हम आदरपूर्वक यह विचार व्यक्त करते हैं कि यदि कानूनसे एक सर्वसम्मत बुराईका इलाज नही होता है तो कानूनकी यह स्थिति अवश्य ही गम्भीर है। परवाना-अधिकारीको उपनिवेशमें व्यापारके परवाने देनेके सम्बन्धमें व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। विद्वान मुख्य न्यायाधीशने कहा है कि कानूनके अनुसार उसे अदालती मामलोंमें अपनी इच्छाका उपयोग न करना चाहिए। अतएव, इसका आशय यह हुआ कि परवाना-अधिकारी अपने व्यक्तिगत शत्रुसे बदला लेनेके लिए किसीको परवाना देनेसे इनकार कर दे और अदालतें उसमें हस्तक्षेप करनेमें असमर्थ होंगी। जहाँतक ऐसे मुकदमोंका ताल्लुक है, राजनीतिक वैमनस्य और व्यक्तिगत शत्रुतामें बहुत ही कम अन्तर रह जाता है। विक्रेता-परवाना अधिनियम एक प्रशासनिक कानून है। अब वह किसी भी अर्थमें राजनीतिक कानून नहीं है। परवाना-अधिकारीने श्री हुंडामलको इसलिए परवाना नहीं दिया है कि वह, निःसन्देह, जिस जातिके हुंडामल हैं उससे राजनीतिक वैमनस्य रखता है। वस्तुतः उसने अपने कारणमें यह कहा भी है। वह कारण यह है कि वेस्ट स्ट्रीटमें एशियाइयोंको और अधिक परवाने देना हितकर नहीं है। किन्तु शरारत तो हो गई है। देशका सर्वोच्च न्यायालय इस बुराईको सुधारनेमें अपनेको असमर्थ पाता है। प्रत्येक भारतीय परवाना दाँव-पर चढ़ा है। यदि किसी प्रकारकी राहत प्राप्त करनी है तो ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको अवश्यमेव कमर कस लेनी चाहिए, अवसरके अनुकूल काम करना चाहिए तथा जबतक यह लज्जाजनक कानून कानूनकी किताबसे हटा न दिया जाये तबतक लड़ाई बराबर जारी रखनी चाहिए। सरकार, स्थानिक संसद तथा उपनिवेश-सचिवके नाम प्रार्थनापत्र भेजे जाने चाहिए और उनका ध्यान इस मामलेकी ओर आकृष्ट करना चाहिए। यदि स्थानिक संसद, जिसके सदस्यगण, सर जॉन रॉबिन्सनके शब्दोंमें, प्रतिनिधित्वहीन ब्रिटिश भारतीयोंके न्यासी हैं, न सुनें तो भारत कार्यालय को, जो करोड़ों भारतीयोंके लिए सर्वोपरि न्यासी है, दखल देना चाहिए और नेटाल सरकारको इस बातके लिए राजी करना चाहिए कि वह भारतीयोंके साथ यह छोटा-सा न्याय करे जिसके वे अधिकारी हैं। स्वर्गीय सर हैरी एस्कम्बने इस विधेयकको पेश करते वक्त यह कहा था कि इस कानूनकी सफलता उसके अन्तर्गत प्रदत्त अधिकारोंके प्रयोगमें बरती गई नरमीके ऊपर निर्भर होगी। यदि स्थानीय अधिकारी नरमीके साथ अपने अधिकारोंका प्रयोग न करें तो सम्भवतः वे उनसे वापस ले लेने पड़ेंगे। यह कानून

१. देखिए, "हुंडामलका परवाना", खण्ड ४, पृष्ठ ३०० और ३२५ ।

आठ वर्षसे भी अधिक समयसे अमलमें आ रहा है और इस बातसे कोई भी इनकार नही कर सकता कि बहुत-से अवसरोपर इसका प्रयोग विवेकहीनताके साथ हुआ है और वह हमेशा ही उपनिवेशके भारतीय व्यापारियोके सिरपर नगी तलवारकी तरह लटकता रहा है। इस तलवारको हटा लेने और मुसीबतजदा लोगोंको यह अनुभव करनेका अवकाश देनेका समय आ गया है कि वे ब्रिटिश सांविधानिक शासनके अधीन हैं, रूसी निरंकुशताके अधीन नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–९–१९०५

९०. श्री गॉश और भारतीय

जोहानिसबर्गके महापौर श्री जॉर्ज गॉश एक सभामे भाषण देते हुए, यों कहें कि, बहक गये। सभा हाल ही मे ट्रान्सवाल प्रगतिशील संघके तत्वावधानमें पॉचेफस्ट्रूममे हुई थी। वे जब बोले तो स्वतन्त्र विचारोंके धनी केवल गॉशके रूपमे नही, बल्कि प्रगतिशील सघके प्रतिनिधिके रूपमें और ऐसे व्यक्तिके रूपमे जो सरकारी पक्षके विचार व्यक्त करनेके लिए बाध्य हो, फिर चाहे वे उनके अपने मतसे मेल खाते हो या नहीं। जिन थोड़े-से लोगोंने जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी कार्रवाईपर सन् १९०३ में ब्रिटिश भारतीयोके पक्षमें अपनी आवाज उठाई थी उनमें से एक श्री गॉश भी थे। तब उनका खयाल था कि एशियाइयोकी स्पर्धा बिलकुल स्वस्थ है। वे ब्रिटिश भारतीयोंको वांछनीय नागरिक मानते थे, क्योंकि वे उद्योगी, मितव्ययी और कानून-पालक थे। जोहानिसबर्गके महापौर उन झूठी बातोको दुहरानेमें भी नही झिझकते जो श्री लवडे और उनके मित्रोंने फैलाई थीं। ब्रिटिश भारतीयोंकी बदनामी करनेमें उनको हिचक नही मालूम होती। उनको भारतीयोमें गोरी जातिके लिए खतरा दिखाई देता है। परन्तु कुछ समय पहले उनका विचार यह था कि जिस समाजमें वे रखे जायेंगे उसको शक्ति ही प्रदान करेंगे। उनकी दृष्टिसे, आज एशियाई लोग

> सामाजिक स्थितिमें गोरोंसे पूरी तरह भिन्न हैं। उनको गोरे व्यापारियोंसे स्पर्धा करने देना उचित नहीं है, क्योंकि वे एक-दूसरेसे होड़ नहीं कर सकते। एशियाई लोगोंमें देशकी नागरिकताका भार उठानेका भाव बहुत कम है। वे तो सभी जरूरी जिम्मेदारियों और कर्त्तव्योंसे बचते हैं और अन्तमें उनका बोझ गोरोंको उठाना पड़ता है।

और, फलत:, श्री गॉश गर्वसे कहते हैं:

> यह न्यायोचित नहीं है कि गोरे व्यापारियोंको एशियाई व्यापारियोंके सामने खड़ा कर दिया जाये और फिर उन्हें इस खींच-तानकी भावनाके आधारपर मिट जाने दिया जाये कि चूंकि एशियाई लोग साम्राज्यके किसी दूसरे भागमें रहनेवाले ब्रिटिश प्रजाजन हैं, इसलिए उन्हें हमारी सहानुभूति प्राप्त करनेका अधिकार है। (श्री गॉश स्वयं १९०३ में इस भावनाके शिकार हो गये थे।)

श्री गॉशने हमें यह नहीं बताया है कि नागरिकताके भारका अर्थ क्या है? क्या इसका अर्थ सार्वजनिक भोज देना और शेम्पेनकी बोतलें खोलना है? हम यह स्वीकार करते है कि यदि यह बात हो तब तो गरीब एशियाईमे ऐसा भार उठानेकी भावना बहुत कम है। किन्तु

यदि इसका अर्थ देशके कानूनोंका पालन करने, अपना कर चुकाने, जनतापर बोझ बननेके बजाय अपने गाढ़े पसीनेकी कमाईसे अपनी रोटी कमाने, समाजके नैतिक कानूनोंके अनुसार आचरण करने और अपने अधिवासके देशकी रक्षामें सहायता — चाहे वह कैसी और कितनी भी छोटी क्यों न हो — देनेकी तैयारी है, तब तो हमें यह कहनेमें कोई झिझक नहीं है कि भारतीयोंने अपना नागरिकताका भार भलीभाँति उठाया है। परन्तु हम समझते हैं कि जो लोग जानबूझकर भ्रम फैलाना चाहते हैं उनसे तर्क बेकार है। हम भारतीयोंके सम्बन्धमें अबतक जो-कुछ कहते आये हैं उसे श्री गॉश भलीभाँति जानते हैं। किन्तु उन्हें उस समय अपना मोर्चा बदलना अधिक अनुकूल पड़ता था और उनमें मत प्राप्त करनेके लिए उत्सुकता भी थी। श्री गॉशका उदाहरण बताता है कि वर्तमान अवस्थाओंमें सार्वजनिक जीवन कितनी नाजुक हालतमें पहुँच गया है। कुछ भी हो, प्रभावशाली व्यक्तियोंको सन्तुष्ट करना ही होगा। इनको सन्तुष्ट करनेके लिए पवित्रसे पवित्र वस्तुका बलिदान किया जा सकता है। यदि लोक-शासनका परिणाम यही है तब तो वह दिन दूर नहीं जब उससे तेज दुर्गन्ध उठने लगेगी और वह मक्कारी तथा बेईमानीका प्रतीक और घृणित बन जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-९-१९०५

९१. ऑरेंज रिवर उपनिवेशके भारतीय

हम अन्यत्र वह पत्र-व्यवहार[1] प्रकाशित करते हैं जो ऑरेंज रिवर उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें लॉर्ड सेल्बोर्न और जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघके बीचमें हुआ था। लॉर्ड सेल्बोर्नका उत्तर अत्यन्त शिष्ट है, परन्तु है उतना ही निराशाजनक। गवर्नर प्रत्यक्षतः ब्रिटिश भारतीयोंको सान्त्वना देना चाहते हैं। फिर भी वे निश्चय ही उन स्थानीय अधिकारियोंकी रिपोर्टोंसे पथ-भ्रान्त हो गये हैं जो असली प्रश्नको बड़ी चतुराईसे घपलेमें डालनेमें सफल हो गये हैं। ब्रिटिश भारतीय संघने भारतीयोंको तमाम किस्मोंके रंगदार लोगोंके साथ, जिनमें दक्षिण आफ्रिकाके वतनी लोग भी शामिल हैं, वर्गीकृत करनेका स्वभावतः ही विरोध किया था। उसने जो कानून इस उपनिवेशके वतनी लोगोंके लिए बनाये गये हैं उनको उप-निवेशमें आनेवाले भारतीयोंपर लागू करनेपर नाराजगी जाहिर की थी। इस कानूनका प्रभाव असली तौरपर बहुत थोड़े भारतीयोंपर पड़ता है अतः अन्याय और भी अधिक गम्भीर हो जाता है; क्योंकि परिस्थितियोंको देखते हुए उनपर यह कानून लागू करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। नौकरोंके पंजीकरणकी आवश्यकताका विरोध हमने कभी नहीं किया। जो कानून समय-समयपर इन स्तम्भोंमें उद्धृत किये जाते रहे हैं उनके सम्बन्धमें हम दिखा चुके हैं कि उनसे वैयक्तिक स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगता है और प्रभावित लोगोंका अपमान होता है। ब्रिटिश भारतीय संघने ऐसे ही कानूनोंके विरुद्ध शिकायत की है; और वह ठीक है। इसके बदलेमें उसे मिला क्या है? नौकरोंके पंजीकरणका औचित्य सिद्ध करनेके लिए श्रीलंकाका एक उदाहरण है जिसका विरोध कभी किया ही नहीं गया। संघने अपने अन्तिम उत्तरमें[2] लॉर्ड

१ और २. देखिए "पत्र : गवर्नरके निजी सचिव को", पृष्ठ ५६।

सेल्बोर्नका ध्यान इस बातकी ओर उचित ही खींचा है कि उन्हे अवश्य ही निकट भविष्यमें ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें प्रवेशका अधिकार प्राप्त होनेकी आशा है; और यदि उनकी यह आशा न्यायपूर्ण हो तो जो प्रतिबन्धक कानून भविष्यमे बनाया जायेगा उसपर आपत्ति की जा सकती है। यह मामला ऐसा है कि इसपर तुरन्त कार्रवाई करनेकी आवश्यकता है; और हमें आशा है कि लॉर्ड सेल्बोर्न कृपापूर्वक उन ब्रिटिश भारतीयोके प्रति, जो ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें बस गये है या जिन्हे निकट भविष्यमे वहाँ जाना पड़ सकता है, न्याय करानेकी व्यवस्था करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-९-१९०५

९२. उपनिवेशमें उत्पन्न प्रथम भारतीय बैरिस्टर[1]

हम श्री बर्नार्ड गैब्रियलका, जो हाल ही में इंग्लैंडसे पूर्ण बैरिस्टर बनकर लौटे है, हार्दिक स्वागत करते है। साधारण परिस्थितियोमें किसी नवयुवकके बैरिस्टर बन जानेपर खास तौरसे उल्लेख करनेका कोई कारण न होता, परन्तु जिस घटनामें इस समय हमारी दिलचस्पी है वह बहुत अर्थपूर्ण है। श्री गैब्रियलके माता-पिता उन भारतीयोमें से है जो इस उपनिवेशमें पहले-पहल आकर बसे थे और जो गिरमिटिया वर्गके थे। उन्होने और उनके बड़े पुत्रोने अपने सर्वस्वकी आहुति देकर अपने सबसे छोटे पुत्रको उच्च कोटिकी शिक्षा दिलाई है। यह उनके लिए बड़ेसे-बड़े श्रेयकी बात है। इससे उनकी सार्वजनिक भावना और पैतृक वत्सलता प्रकट होती है। उन्होने उन गरीब भारतीयोको, जिन्हे अपनी जीविकाके लिए गिरमिटिया बनकर काम करना पड़ा है, सब विचारवान लोगोकी दृष्टिमें ऊँचा उठाया है। श्री बर्नार्ड गैब्रियलने यह भी दिखा दिया है कि इन परिस्थितियोमे भी गरीब भारतीयोंके बालक ऊँची योग्यता प्राप्त करनेमें समर्थ है; और हमारा तो खयाल है कि इस घटनापर उपनिवेशियोको भी गर्व करना चाहिए। इसका एक दूसरा पहलू भी है। जहाँ एक भारतीयके नाते श्री बर्नार्ड गैब्रियलको कानूनकी शिक्षा पाकर बैरिस्टर बन जानेपर अपने आपको बधाई देनेका पूरा अधिकार है, वहाँ उन्हें मानना चाहिए कि यह उनके उपजीवनका आरम्भ-मात्र है। उन्हे चाहिए कि वे अपने आपको जीवनके उसी क्षेत्रके अपने साथी भारतीय युवकोंका न्यासी समझे। यदि उन्होने अच्छा उदाहरण उपस्थित किया तो अन्य माता-पिताओको भी अपने बालकोंको शिक्षा पूरी करनेके लिए इग्लैड भेजनेकी प्रेरणा मिलेगी। उन्होने एक सम्मानित पेशा अपनाया है, परन्तु यदि उन्होने इसे रुपया जोड़नेका साधन बनाया तो, सम्भव है, उनके हाथ असफलता ही लगे। यदि उन्होने अपनी योग्यताका उपयोग समाजकी सेवाके लिए किया तो वह अधिकाधिक बढ़ती चली जायेगी। अतः हमे आशा है कि श्री गैब्रियल अपने पेशेकी

१. इसी आशयका एक मानपत्र बर्नार्ड गैब्रियलको १९ सितम्बरको कांग्रेस भवनमें डर्बनके भारतीयोंकी एक सभामें दिया गया था। (इंडियन ओपिनियन २३-९-१९०५)। प्रतीत होता है कि गांधीजी उस सभामें सम्मिलित नहीं थे और हस्ताक्षरकर्ताओंमें भी उनका नाम नहीं था। फिर भी असम्भव नहीं कि मानपत्रका मसविदा बनानेमें उनका हाथ रहा हो। उसमें एक वाक्य यह है: "हमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप दक्षिण आफ्रिकामें बड़े उत्साहसे अपने देशवासियोंके हितोंका समर्थन करेंगे और उनकी उन्नतिमें योग देंगे तथा आप अपने प्रभावका उपयोग उनकी सुख-सुविधाके निमित्त करेंगे।"

परम्पराओंकी सच्ची जानकारी अपने साथ लेकर आये हैं और वे जो-कुछ भी करेंगे वह विवेकपूर्ण, शान्त, विनम्र और देशभक्तिपूर्ण होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-९-१९०५

९३. ट्रान्सवालमें अनुमतिपत्र सम्बन्धी विनियम

ब्रिटिश भारतीय संघका कड़ा विरोधपत्र

अभी हालमें अनुमतिपत्र कार्यालयकी तरफसे कानून प्रकाशित हुआ है कि जिन लोगोंको अनुमतिपत्र चाहिए वे दो यूरोपीय गवाहोंके नाम पेश करें। उन्हें तभी अनुमतिपत्र मिल सकेगा। यह कानून अत्याचारपूर्ण है। इसके विरोधमें ब्रिटिश भारतीय संघने बहुत कड़ा पत्र लिखा है। उसमें कहा गया है कि यूरोपीय भारतीयोंको उनके नामसे पहचान सकते हों, ऐसे बहुत ही कम उदाहरण है। ऐसा नियम बनानेका अर्थ यह माना जायेगा कि सरकार अब किसी भी भारतीयको ट्रान्सवालमें आने देना नहीं चाहती। फिर इस नियमसे झूठको प्रोत्साहन मिलेगा। क्योंकि बहुत-से झूठे गोरे निकल आयेंगे और वे कुछ रकम लेकर शपथ लेनेमें जरा भी संकोच न करेंगे। अबतक ट्रान्सवालमें केवल १२,००० भारतीय दाखिल हुए हैं। युद्धसे पहले करीब १५,००० थे। अतः यह माननेका कारण है कि अब भी ३,००० पुराने भारतीयोंका लौटना बाकी है। वे सब बहुत कष्ट उठा रहे हैं और उनको अविलम्ब प्रवेशकी अनुमति देना सरकारका कर्त्तव्य है। अनुमतिपत्र-सचिवने यह पत्र परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको भेजा है। वे यह जानना चाहते हैं कि युद्धसे पहले १५,००० भारतीय थे, यह किस आधारपर कहा गया है। इसका जो उत्तर संघने दिया है उसमें निम्न सबूत पेश किये गये हैं:

(१) अध्यक्ष श्री अब्दुल गनीका निजी अनुभव।

(२) अन्य पुराने भारतीय निवासियोंकी निजी जानकारी।

(३) युद्धसे पहले ब्रिटिश एजेंटकी दी हुई रिपोर्ट, जिसमें भारतीयोंकी आबादी प्रायः १५,००० बताई गई है।

(४) सन् १८९५ में भारतीयोंकी आबादी ५,००० बताई गई थी। सन् १८९५ से १८९९ तक ट्रान्सवालमें १०,००० लोग आये हों तो आश्चर्यकी बात नहीं है। सन् १८९६ में भारतमें प्लेग हुआ। सन् १८९७-९८ में भीषण अकाल पड़े। उस समय भारतसे हजारों लोग बाहर गये। सन् १८९७ मे, नेटालमें सख्त कानून बनाये गये। इन सबका यह परिणाम हुआ कि ट्रान्सवालमें बहुत-से भारतीय आये। यद्यपि उस समय विदेशी राज्य था तब भी भारतीयोंको आनेकी पूरी छूट थी। उन्हे रोकनेके सम्बन्धमें स्वर्गीय श्री क्रूगरसे प्रार्थना की गई थी। वह उन्होंने अनसुनी कर दी। उस समय 'नादरी', 'कूरलैंड', 'हुसैनी', 'क्रीसेंट' ये चार जहाज बम्बई तथा दक्षिण आफ्रिकाके बीच आते-जाते थे और प्रत्येक जहाज सैकड़ों भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकामें लाता था। प्रत्येक जहाज वर्षभर में चार फेरे करता था और यदि प्रत्येक जहाजमें तीन सौ भारतीय आये हों तो १६ फेरोंमें एक वर्षमें अवश्य ही ४,८०० भारतीय आये होंगे।

उत्तरमें इस प्रकारके सबूत सरकारको दिये गये हैं और यह भी बताया गया है कि श्री लवडे[1] तथा अन्य लोग जो विवरण देते हैं, वह बिलकुल झूठा है। इसलिए सरकारको उसपर ध्यान नहीं देना चाहिए और जो गरीब भारतीय अब भी बाहर हैं उनको तुरन्त प्रविष्ट होने देना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-९-१९०५

९४. पत्र: छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
सितम्बर २३, १९०५

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। किचिनके सम्बन्धमें तुमने जो लिखा है उससे आश्चर्य होता है। उसके स्वभावसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। वह तुम्हारे ऊपर तो है नहीं। वह जो-कुछ कहे, उसका तुम जवाब दे सकते हो। लेकिन इतना ही जरूरी है कि तुम गुस्सा न करो। तुम दोनों एक समान हो और परस्पर प्रश्नोत्तर कर सकते हो। वह जो-कुछ भी कहे उसे सहन करनेका अर्थ यह नहीं कि तुम उसे जवाब न दो, बल्कि इतना ही है कि तुम उसका आवेशपूर्वक विरोध न करो। वेस्टका किस्सा जानता हूँ। इसमें मुझसे भूल हुई है। मैंने उसे कहा था कि वह उनके यहाँ चला जाये। किन्तु मैं यह भूल गया कि किचिन साहब किसीका भी साथ बर्दाश्त नहीं कर सकते। उनमें यह अवगुण है। इसका खयाल नहीं करना चाहिए।

मैंने तुम्हें अच्छी तरह समझा दिया है कि किचिन या कोई और भी आदमी जाये तो मुझे उसकी परवाह नहीं। इससे छापाखाना बन्द न होगा। मेरा अन्तिम आधार तो तुम और वेस्ट हो। तुम दोनों जबतक बैठे हो तबतक छापाखाना बन्द नहीं होगा। इतनेपर भी यदि तुम्हारे मनमें शका उत्पन्न होती है तो मैं इसे तुम्हारी कमजोरी मानता हूँ।

छापेखानेमें बिजलीकी रोशनी वगैरापर कितना खर्च हो, यह मुझसे पूछे बिना तय नहीं होगा। फिर भी तुम बैठकमें कह सकते हो कि यह खर्च मुझसे पूछे बिना नहीं किया जायेगा। मैंने इस सम्बन्धमें ज्यादासे-ज्यादा ४० पौंड तक की स्वीकृति देनेको कहा है। मैंने उनके[2] घरमें छापेखानेके खर्चसे दफ्तर बनानेकी अनुमति नहीं दी है। टेलीफोनके लिए मैं इनकार नहीं करता।

मेनरिंगको पैसे दिये जायें।

कालाभाईको[3] तुम्हें कहना चाहिए। उसे कितने रुपये दिये गये थे, यह तो मुझे याद नहीं है। लेकिन उसने, सम्भवत, ५०० रुपये रेवाशंकर भाईसे लिये हैं। तुम कहो तो मैं फिर

१. ट्रान्सवाल विधान परिषद्के सदस्य; देखिए "श्री लवडे और ब्रिटिश भारतीय", खण्ड ४, पृष्ठ २२२-२३।

२. किचिन के।

३. गांधीजीके चचेरे भाई परमानन्दके पुत्र गोकुलदास, उर्फ कालाभाई।

कालाभाईको कामके सम्बन्धमें लिखूं। इस सम्बन्धमें तुम्हें डरना नहीं चाहिए। मैं रेवाशंकर भाईको लिखूंगा।

हेमचन्दको[1] कामसे हटाया न जाये। रामनाथको भी बहुत विचार किये बिना अलग न करना।

मोहनदास

[पुनश्च]

चि० गोकुलदासके सम्बन्धमें तार मिला। पता नहीं चलता, वह अपना अनुमतिपत्र साथ लाया है या कल्याणदासके पास छोड़ आया है।

हमने जिस रुपयेकी प्राप्ति स्वीकार की है, सुलेमान इस्माइल उसका बिल माँगते हैं। वह उन्हें भेज दो।

मूल गुजरातीकी फोटो-नकल (एस०एन० ४२५०) से।

९५. पत्र: छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
सितम्बर २७, १९०५

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

हेमचन्दका पत्र आज आया है। उसमें उसने लिखा है कि उसको नौकरीसे निकलनेकी अन्तिम सूचना दे दी गई है। उसपर मैंने तार दिया है कि उसको न निकाला जाये। रामनाथको हटाना भी मुझे अखरता है। लेकिन यदि उसकी व्यवस्था चि० जयशंकरके पास हो सकती हो तो कर देना। मेरा हेमचन्दको दोषके बिना अलग करनेका बिलकुल विचार नहीं है। मैं उसका विशेष उपयोग करना चाहता हूँ। मैं तुमको लिख चुका हूँ कि मैंने इस सम्बन्धमें किचिनको पत्र लिखा है।

मैंने वीरजीको आज पत्र[2] लिखा है। उसमें उसे उलाहना दिया है। वर्ष पूरा होने तक कालाभाईको रुपया चुकानेके लिए लिखा है।

मालूम होता है, हेमचन्दको मेरे पत्र नहीं मिलते। इसके साथ उसके लिए भी एक पत्र संलग्न[3] है। इसे पढ़कर उसको दे देना। ग्रे स्ट्रीटके पतेसे पत्र मिलते हैं या नहीं, लिखना।

हम अखबारमें जिस रकमकी प्राप्ति स्वीकार कर चुके हैं उसका बिल सुलेमान इस्माइलको भेजनेके लिए मैंने लिखा है; क्योंकि उन्होंने वह माँगा है। इतनेपर भी वे यह रुपया न देंगे तो हम उसे बट्टे खाते लिख देंगे।

मुझे नहीं लगता कि मैं चि० गोकुलदासको दो महीनेमें गुजरातीमें तैयार कर सकूँगा। उसका ज्ञान कच्चा मालूम होता है।

१. श्री राजचन्द्रके एक सम्बन्धी।
२ और ३. ये उपलब्ध नहीं हैं।

तुमने चि० मणिलालका समय-विभाजन ठीक रखा है। उसकी रुचि खेतीमें है तो उसको घरके आसपास काम करनेके लिए कहना। मुख्य बात तो है जमीनके उस बड़े टुकड़ेको साफ करनेकी और उसमें पानी देनेकी। वह पेडोंपर ध्यान रखेगा तो उसे अपने-आप विशेष बातें मालूम हो जायेंगी। वह क्या पढ़ता है? मैं उसे अंग्रेजीमें कम्पोज करनेके लिए लिखूँगा। वह गुजरातीमें भी प्रशिक्षण ले तो अच्छा होगा।

मुझे तुम्हारा मन कुछ कमजोर होता दिखता है। वास्तवमें कुछ महीने तुम्हारा यहीं रहना जरूरी है। लेकिन वह संभव नहीं दिखता। तुम छापेखानेमें रहनेके लिए कृतसंकल्प हो, इतना काफी नहीं है। मैंने तुमको दो और दो चारकी तरह असदिग्ध रूपमें बता दिया है कि छापाखाना बन्द नहीं होगा। तुमने तब सहमति प्रकट की थी और अब लिखते हो कि परिस्थितियाँ दुस्सह और अनिश्चित हैं। मैं इसीको निर्बलताका चिह्न समझता हूँ। छापेखानेमें क्या है, तुम्हारा अपना कर्तव्य क्या है और लोगोंको किस तरह सँभाला जावे, इसका विचार तुम नहीं कर सके। उसके लिए तुम्हें अवकाश नहीं मिला। और विपरीत परिस्थितियोंके कारण तुम्हारी निर्बलता प्रकट हुई है। ऐसा होना भी मैं अच्छा समझता हूँ। लेकिन तुम स्वयं उसका तात्पर्य समझ सको तभी वह अच्छा है। यह सब मैं पत्र द्वारा नहीं समझा सकता। सिर्फ इतना ही लिखता हूँ कि (१) जबतक एक भी मनुष्यकी अनन्य भक्ति होगी, तबतक छापाखाना टूट नहीं सकता। (२) तुम्हारे और दूसरोंके लिए मैं छापेखानेके सिवा दूसरे किसी कामको अनुकूल नहीं समझता। (३) मनुष्य कितना ही तीखे मिजाजका हो, फिर भी यदि हम उसकी ओर मन, वचन और कायासे निर्मल प्रेम रख सकें तो वह तुरत ठिकानेपर आये बिना नहीं रहेगा। (४) लेकिन वह ठिकानेपर आये या न आये, हमारा कर्त्तव्य यही है कि हम निश्चित होकर एक ही दिशामें चलते रहें। मैं मानता हूँ कि तुम हेमचन्दको सिखा लो और चिंताओंसे कुछ छूट जाओ तो बहुत अच्छा हो। मैं यह चाहता भी हूँ।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२५२) से।

९६. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
सितम्बर २९, १९०५

चि० छगनलाल,

ऑर्चर्डने मुझे लिखा है कि तुमने रामको एक किताबकी जिल्द बाँधनेका ऑर्डर सीधा दे दिया और उनकी शिकायत है कि अगर वे फ़ोरमैन हैं तो यह अनियमित था। वे यह भी कहते हैं कि किताबकी जिल्द अच्छी नहीं बाँधी गई है। मैंने उनको लिखा है कि अगर तुमने ऐसा किया है और ऑर्डर सीधा दिया है तो यह अनियमित है, मगर इसमें सम्भवतः तुम्हारा इरादा उन्हें नाराज़ करनेका या नियम तोड़नेका नहीं हो सकता। मैंने उनसे यह भी कहा है कि वे तुमसे आमने-सामने बातचीत कर लें। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम उनसे बातें कर लो और मामला क्या है, यह मुझे भी सूचित करो। यह बात बिलकुल ठीक है कि ऑर्डर

उन्हींके पास भेजे जाने चाहिए, सीधे अलग-अलग लोगोंको नहीं। करसनदासको[1] 'इंडियन ओपिनियन' की एक प्रति रानावाव[2] निःशुल्क भेज दिया करो।

मोहनदासके आशीर्वाद

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मारफत 'इंडियन ओपिनियन'
फीनिक्स

मूल अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२५३) से।

९७. ट्रान्सवालमें कानून बनानेकी सरगरमी

यद्यपि ट्रान्सवालके महान्यायवादी सर रिचर्ड सॉलोमनने कहा था कि ट्रान्सवालकी विधान-परिषदके चालू अधिवेशनमें कोई विवादास्पद कानून पेश नहीं किया जायेगा, तथापि 'गवर्नमेंट गजट' के ताजे अंकमें कई अध्यादेशोंकी एक सूची प्रकाशित हुई है। ये अध्यादेश समाप्तप्राय परिषद द्वारा पास किये गये हैं। अगर उन लोगोंकी भावनाएँ कुछ भी महत्त्व रखती हों, जिनपर उनका असर पड़ेगा तो कहना होगा, इनमें से कुछ निस्सन्देह अत्यन्त विवादास्पद हैं। उदाहरणार्थ, उनमें एक नगरपालिका-कानून संशोधन अध्यादेश है, जिसके द्वारा ट्रान्सवालकी किसी भी नगर-परिषदको यह अधिकार मिलता है कि वह चाहे तो "लेफ्टिनेंट गवर्नरकी स्वीकृतिसे वतनी लोगोंकी ऐसी किसी भी बस्तीको, जिसको उसने बसाया है, या जिसकी नियोजना की है, अथवा जो उसके नियन्त्रणमें है, उठा दे"। हाँ, लेफ्टिनेंट गवर्नर बस्तीको उठानेकी स्वीकृति देनेसे पहले परिषदको उसके लिए उपयुक्त अन्य जमीनका प्रबन्ध करनेका आदेश दे सकता है। इसमें वतनी लोगोंको उनकी झोंपड़ियों आदिका मुआवजा देनेकी व्यवस्था भी की गई है। खण्ड १० में नगर-परिषदको पृथक एशियाई 'बाजार' स्थापित करने और कायम रखनेका अधिकार दिया गया है। और उसमें वतनी बस्तियोंसे सम्बन्धित उक्त व्यवस्था एशियाई 'बाजारोंपर' लागू करनेका विधान भी है। इसका अभिप्राय यह है कि दोनोंमें अंतर केवल इतना रहेगा कि वतनी लोग वस्तियोंमें रहनेके लिए बाध्य किये जा सकेंगे, परन्तु एशियाई सम्भवतः उनमें जानेके लिए विवश नहीं किये जा सकेंगे, जिन्हें 'बाजारों' का नरम नाम दिया गया है। एशियाई 'बाजार'-सम्बन्धी यह कानून प्रिटोरिया-नगरपालिकाके उस संघर्षका परिणाम है जो उसने प्रिटोरियाके एशियाई बाजारको अपने नियन्त्रणमें लेनेके लिए किया था। सिद्धान्तकी दृष्टिसे चाहे सरकारके और नगरपालिकाके नियन्त्रणमें कोई अंतर न हो, परन्तु व्यवहारमें जिस नगरपालिकाका अधिकार होगा उसके मिजाजपर बहुत-कुछ निर्भर कर सकता है। इसलिए 'बाजारों' के सम्बन्धमें नीति एक-सी होनेके बजाय, प्रत्येक नगरपालिकाकी मर्जीके अनुसार भिन्न होगी। यह समझना बड़ा कठिन है कि सारे एशियाई प्रश्नपर ब्रिटिश सरकार और ट्रान्सवाल सरकारमें पत्र-व्यवहार चालू होनेपर भी, वर्तमान परिषदने अपने अन्तिम दिनोंमें इस प्रकारका कानून क्यों पास किया। अन्य बहुतसे महत्त्वपूर्ण और आवश्यक मामले स्वभावतः इसी कारण रोक लिये गये हैं कि अगले वर्ष निर्वाचित परिषदकी स्थापना होगी ही। संशोधित अध्यादेशोंमें नगरपालिकाओंको

१. गांधीजीके भाई।
२. पोरबन्दरके पास एक गाँव।

उन चायघरों या भोजन-गृहोंको परवाने लेनेके लिए बाध्य करनेका अधिकार दिया गया है, जिनका उपयोग सम्भवतः केवल एशियाई लोग करते हैं। हमारा खयाल है, इसके लिए ट्रान्सवालके एशियाइयोंको कुछ चीनी दूकानदारोंको धन्यवाद देना चाहिए। ये चीनी भोजन-गृह खोलनेके लिए तो उतावले थे, परन्तु इन्हें यह पता नही था कि उनके लिए परवाना लेनेकी आवश्यकता नही है। इन्होंने सरकारको प्रार्थनापत्र दिया कि उन्हें भोजन-गृह खोलनेकी सुविधाएँ दी जायें। सरकारने इनके साथ वही सलूक किया जिसके वे लायक थे। अब सब एशियाई भोजन-गृहोंके मालिकोंको छोटे-छोटे उपाहार-गृहो तक पर नगरपालिकाओके नियन्त्रणका मजा चखना पड़ेगा। सफाईके विचारसे नगरपालिकाके नियन्त्रणकी बात हम समझ सकते है, और उसका स्वागत भी करते है; परन्तु जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है, जो रोजगार मुश्किलसे लाभप्रद हो सकते है उनके लिए भी परवानेकी शर्त रखना सर्वथा अनुचित है। परन्तु ब्रिटिश भारतीय भी तो एशियाई हैं; इसलिए ट्रान्सवाल सरकारका तर्क यह है कि यदि ४५,००० चीनियोंकी भोजन-व्यवस्था करनेवाले भोजन-गृहोंपर परवाना लेनेका नियम लागू किया जाता है तो १२,००० भारतीयोके भोजन-गृहोंपर वह क्यों न लागू किया जाये? उसे यह नही सूझा कि भारतीय भोजन-गृह हैं ही बहुत कम, क्योकि उनके रीति-रिवाज ऐसे है कि उन्हें भोजन-गृहोंकी आवश्यकता नही पड़ती। निश्चय ही वे इतने कम हैं कि उनकी ओर अबतक किसीका ध्यान नही गया था।

इसके अतिरिक्त, राजस्व-परवाना अध्यादेश है। उसके अनुसार फेरीवाले और ठेलोंपर सौदा बेचनेवाले लोग परवानोंके अधिकारी तभी हो सकेंगे, जब पहले वे मजिस्ट्रेटों, शान्ति-रक्षक न्यायाधिकारियो (जस्टिस ऑफ द पीस) या पुलिस अधिकारियोंसे प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेंगे। अपवाद केवल उन लोगोंके लिए होगा जिनके पास पहलेसे परवाने होंगे, परन्तु इन भाग्यवान् लोगोको भी यह सुविधा तभी मिलेगी जब वे अपने परवाने मियाद खत्म होनेसे पहले चौदह दिनके भीतर अपने जिलेके राजस्व-अधिकारियोंको सौंप देंगे।

जोहानिसबर्गके भूमि अध्यादेशके अनुसार,

> लेफ्टिनेंट गवर्नर इस अध्यादेशके साथ सलग्न अनुसूचीमें वर्णित किसी भी भूमिको जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी परिषदको दे देता है तो वैसा करना कानून-सम्मत माना जायेगा, बशर्ते कि यह भूमि इस प्रकारसे, और ऐसी शर्तोंपर दी जाये जिस प्रकारसे, और जैसी शर्तोंपर नगरपालिका परिषद देना उचित समझे; और उस भूमिमें किसी व्यक्तिका उस समय कोई अधिकार हो तो उसका ध्यान रख लिया जाये।

जिन भूमियोंपर इसका प्रभाव पडेगा उनमें जोहानिसबर्गकी मलायी बस्ती भी है। यह बस्ती बारह वर्षसे या इससे भी अधिक समयसे वहाँ बसी है। इसके विरुद्ध, इसके निवासियोंकी आदतों या इसकी स्थितिके कारण, कभी किसीने कोई आपत्ति नहीं उठाई। युद्धसे पहले विभिन्न ब्रिटिश एजेंटोने, जो यहाँ सरकारका प्रतिनिधित्व करते थे, इस बस्तीके निवासियोमें सुरक्षाकी भावना उत्पन्न कर दी थी, और इसीलिए उन्होने वहाँ पक्के मकान बना लिये थे। परन्तु कानूनी दृष्टिसे वहाँ उनका अधिकार केवल मासिक किरायेदारके रूपमें है। अब यदि यह कल्पना की जाये कि उनको वहाँसे हटा दिया जायेगा तो प्रश्न यह उठता है कि उन्हें मुआवजा क्या मिलेगा? हम यहाँ यह जिक्र किये बिना नही रह सकते कि फ्रीडडॉर्पके एक भाग और दूसरे भागमें अत्यन्त ईर्ष्याजनक भेद-भाव किया गया है; क्योकि यह सारी मलायी बस्ती फ्रीडडॉर्पका भाग है। जिस भागमें पुराने गरीब यूरोपीय नागरिक रहते हैं उसके साथ सरकारने

भारी रियायतका बरताव किया है। जैसा कि पाठकोंको इन स्तम्भोंसे ज्ञात हो गया होगा, इन लोगोंसे इनकी भूमि नहीं ली जायेगी। इतना ही नहीं, बल्कि उनकी मासिक किरायेदारी लम्बे पट्टोंमें बदल दी जायेगी। यही सुविधा मलायी बस्तीके निवासियोंको भी क्यों नहीं दी जानी चाहिए? इन लोगोंको चाहिए कि ये अपने अधिकारोंकी उचित रक्षाका प्रयत्न करें। जिन कानूनोंको निर्विवाद बताया जा रहा है उनके ये केवल कुछ उदाहरण हैं। इनके द्वारा किसी-न-किसी रूपमें रंगदार लोगोंके अधिकारोंपर प्रहार किया गया है; और उनको अपनी सरकारके चुनावका कोई अधिकार नही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-९-१९०५

९८. केप प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम

केपके १९ सितम्बर १९०५के 'गवर्नमेंट गज़ट' में यह प्रकाशित हुआ है:

किसी 'निषिद्ध प्रवासी' को, अधिनियमका उल्लंघन करके उपनिवेशमें आजानेकी अवस्थामें, जिस जिलेमें वह मिला हो उसके मजिस्ट्रेट द्वारा तथ्योंकी आवश्यक जाँचके पश्चात्, उपनिवेशकी प्रादेशिक सीमाओंमें से निकाल देने तक, उस स्थानमें रोक लेने और रखनेकी आज्ञा देना कानूनकी दृष्टिसे उचित होगा जिसका निर्देश समय-समयपर मन्त्री करे। और उचित साधन सम्पन्न होनेपर उसको मन्त्री द्वारा निर्दिष्ट बन्दरगाह या स्थानमें भेजनेका पूरा या आंशिक व्यय उसीसे लिया जायेगा।

यह नियम बहुत कठोर है। प्रतिबन्धक अधिनियम यह मानकर पास किया गया है कि वह उपनिवेशके हितमें है। यह सर्वथा कल्पनागम्य है कि कोई आदमी अनजाने इस अधिनियमका उल्लंघन करके उपनिवेशमें आ जाये। तब यदि उसके पास वहाँसे जानेका खर्च देनेके लायक पर्याप्त रकम पाई जाये तो उसको उसका भार उठानेके लिए विवश करना उचित नहीं होगा। यद्यपि सिद्धान्ततः, कानूनसे अनजान होना दण्डसे बचनेके लिए उचित तर्क नहीं माना जाता, परन्तु शायद व्यवहारमें ऐसे मामले आ जाते हैं जिनमें वह उचित तर्क मान लिया जाता है। इस अधिनियममें पहलेसे ही इस आशयकी एक धारा मौजूद है कि जहाजोंके सब मालिक निषिद्ध प्रवासियोंको वापस ले जानेकी शर्तपर ला सकते हैं। यदि कोई निषिद्ध प्रवासी उपनिवेशमें प्रविष्ट हो जाता है तो इससे अधिकारियोंकी ओरसे निगरानीकी कमी सिद्ध होती है; और केपमें पूरी-पूरी निगरानी न होने अथवा यात्रियोंके चुनावमें जहाजोंके मालिकोंकी लापरवाहीके कारण किसी निरपराध व्यक्तिको दण्डित करना उचित नहीं जान पड़ता। इस कारण हमारा विश्वास है कि केपके ब्रिटिश भारतीय, जिनपर इस अधिनियमका प्रभाव सबसे अधिक पड़नेकी सम्भावना है, इसमें संशोधन करानेका आवश्यक प्रयत्न करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-९-१९०५

९९. चीनी और अमेरिकी

चीनियों द्वारा अमेरिकी मालके बहिष्कारके फलस्वरूप अमेरिकाको प्राय: ५०,००,००० पौंडका नुकसान हो चुका है, ऐसा प्रतीत होता है। इससे अमेरिकी व्यापारियोंने सरकारसे प्रार्थना की है कि चीनियोंके खिलाफ जो कानून[1] हैं वे रद कर दिये जायें। इसके विरोधमें अमेरिकाके मजदूर-वर्गके लोगोने बड़ी-बड़ी सभाएँ करके प्रस्ताव स्वीकार किये है कि व्यापारियोको चाहे कितना ही नुकसान क्यों न हो, चीनियोके खिलाफ बनाये गये कानून रद नही किये जाने चाहिए। इस प्रकार अमेरिकामें एक ओर व्यापारियों और कारीगरोंके बीच फूट चल रही है और दूसरी ओर तारो द्वारा प्राप्त समाचारोसे पता चलता है कि चीनियोने जो ऐक्य कायम किया है, वह और भी मजबूत होता जा रहा है। चीनियोने जो प्रस्ताव किया है वह उन सब देशोंके सम्बन्धमें है, जिनमें चीनी-विरोधी कानून लागू हैं। यह भी कहा जाता है कि गोरोंके विरुद्ध दुर्भावना इस हद तक भड़क उठी है कि चीनके अन्दरूनी भागोंमें जिन गोरोंकी रिहाइश है उनके लिए खतरा मालूम दे रहा है। कहा नहीं जा सकता कि इन सारे आन्दोलनोका क्या परिणाम होगा।

उन्नीसवी शताब्दीमें जो बड़े-बड़े काम हुए माने जाते हैं उन सबकी कसौटी इस बीसवीं शताब्दीमें हो रही है। और ऐसा प्रतीत होता है कि इस शताब्दीमें बहुत बडी उथल-पुथल होनेकी सम्भावना है। इस सारी हलचलमें यह बात दिखाई देती है कि जहाँ ऐक्य है, वहीं बल है और वहींपर जीत है। यह बात ऐसी है जो प्रत्येक भारतीयको अपने मनमें अंकित कर लेनी चाहिए। चीनी कमजोर होनेपर भी ऐक्यके कारण बलवान दिखाई देते हैं और "चीटियाँ मिलकर काले नागके भी प्राण ले लेती हैं", इस कहावतको चरितार्थ कर रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–९–१९०५

१००. नेटालमें उद्योगोंको प्रोत्साहन देनेका आन्दोलन

गवर्नर द्वारा नियुक्त आयोग

इस बारके 'गवर्नमेंट गजट'से पता चलता है कि नेटालमें एक आयोगकी नियुक्ति की गई, है जो यह बतायेगा कि नेटालमें जो-जो वस्तुएँ खपती हैं, वे कैसे बनाई जा सकती हैं और इसके लिए क्या-क्या उपाय करने चाहिए तथा इस प्रकार उत्पन्न की गई वस्तुओंकी खपतको बढ़ावा देनेके लिए चुंगीकी दरमें परिवर्तन किया जाये या नहीं। इस आयोगमें सदस्योंके रूपमें श्री मूअर, डॉ० गवीन्स, श्री अरनेस्ट ऐक्ट, श्री जेम्स किंग, श्री जॉर्ज पेइन, श्री सॉडर्स और श्री मैकेलिसककी नियुक्ति की गई है। हम समझते हैं कि इस आयोगके सामने हमारे व्यापारी गवाही दें तो बहुत अच्छा हो। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जो नेटालमें पैदा की जा सकती हैं और अनुभवी व्यापारी इस दिशामें सहायता कर सकते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–९–१९०५

१. चीनी मजदूरोंका प्रवेश रोकनेके लिए बनाये गये।

१०१. नेटालकी पाठशालाएँ

शिक्षा-विभागके अधीक्षककी रिपोर्ट

नेटालके शिक्षा विभागके अधीक्षक श्री मुडीने अपनी वार्षिक रिपोर्टमें बताया है कि भारतीयों और अन्य काले लोगोंकी पाठशालाओंमें लड़कोंकी स्वच्छतापर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जाता। श्री मुडीकी यह बात सदा ध्यानमें रखने योग्य है। यद्यपि श्री मुडी हमारे खैरख्वाह नहीं है, फिर भी वे जहाँ हमारी भूल बतायें वहाँ हमें विचार करनेकी जरूरत है। माता-पिताओंको इस बारेमें पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। हम लोग स्वयं स्वच्छताके नियमोंका पालन न करते हों तो भी बच्चोंको वह सिखा देना जरूरी है। अगर वे सीखेंगे तो एक पीढ़ीमें ही बड़ा परिवर्तन होनेकी सम्भावना है। लड़कोंके सम्बन्धमें निम्नलिखित बातें याद रखने योग्य हैं:

(१) उनके दाँत साफ होने चाहिए। इसके लिए सुबह और सोनेसे पहले उनसे दंत-मंजन करवाना चाहिए।

(२) उनके बाल साफ होने चाहिए। इसके लिए उनके बाल सदैव छोटे, हमेशा धुले हुए और कंघी किये हुए रखने चाहिए। तेल डालना आवश्यक नहीं है।

(३) उनके नख स्वच्छ होने चाहिए, और समय-समयपर उन्हें काटना और हमेशा धोना चाहिए।

(४) जूते और कपड़े, चाहे कितने ही सादे हों, फिर भी साफ होने चाहिए।

(५) उनका बस्ता और उनकी किताबें भी उसी प्रकार साफ होनी चाहिए। और इसलिए उनको चाहिए कि हाथ साफ हों, तभी वे पुस्तकोंको उठायें।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि इन सूचनाओंको याद रखने और लड़कोंसे उनका पालन करवानेसे लाभ होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–९–१९०५

१०२. जोहानिसबर्गवासियोंको सूचना

हम जोहानिसबर्गके अखबारोंमें देखते हैं कि वहाँ बुखारका मौसम शुरू हो गया है। नगर-पालिकाने घोषित किया है कि जो लोग अपने पाखाने गन्दे रखेंगे उनपर मुकदमा चलाया जायेगा। वहाँ कायदा यह है कि प्रत्येक पाखानेमें, जब-जब उसका उपयोग किया जाये, मैलेपर सदैव सूखी मिट्टी अथवा राख अथवा जन्तु-नाशक भूसी डाली जाये, ताकि मैला ढँक जाये। पाखानेमें जरा भी सीलन अथवा बदबू न रहने दी जाये। यदि इसके अमलमें कोई कसर रहती है तो पाँच पौंड तक जुर्माना किया जाता है। यह नियम बहुत अच्छा है। राख अथवा सूखी मिट्टीका पैसा नहीं लगता। हम अपने पाठकोंसे खास सिफारिश करते हैं कि वे पाखानेमें मिट्टीका कनस्तर रखें और जब-जब पाखानेको काममें लायें तब-तब मैलेपर डिब्बेसे मिट्टी अथवा राख डालें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–९–१९०५

१०३. जॉर्ज वाशिंगटन

अमेरिकाका पहला राष्ट्रपति

अंग्रेजीके छात्र पुस्तकोंमें पढ़ चुके हैं कि एक दिन बालक जॉर्जने एक बेरका पेड़, जो उनके पिताको अत्यन्त प्रिय था, खेल-खेलमें काट दिया था। पिताने जब अपने पेडका यह हाल देखा तब उसके बारेमे जॉर्जसे पूछा। जॉर्जने उत्तर दिया, "पिताजी, मुझसे झूठ तो नही बोला जा सकता। यह पेड़ मैंने काटा है।" पिताने यह प्रश्न बहुत क्रोधमें किया था। लेकिन जॉर्जने जब आँखोंमें आंसू भरकर निर्भीक उत्तर दिया तो वे खुश हो गये और उन्होंने अपने पुत्रके अपराधको दरगुजर कर दिया। उस समय जॉर्ज बहुत ही छोटा था।

जिस लड़केके मनमें सत्य इस तरहसे बद्धमूल था वह अपनी ५५ वर्षकी उम्रमें अमेरिकाका, जिसका नाम आज दुनियामें फैला हुआ है, पहला राष्ट्रपति बना। उसके राष्ट्रपति बननेके समय लोग उसे राजा बनाने तथा मुकुट पहनानेके लिए तैयार थे। लेकिन उसने वह प्रस्ताव ठुकरा दिया।

जॉर्ज वाशिंगटनका जन्म २२ फरवरी, १७३२ को वर्जिनिया राज्यके वेस्ट मोरलैंड शहरमे एक धनी घरमें हुआ था। उसके जीवनके पहले सोलह वर्षका हाल पूरी तरह किसीको मालूम नहीं है। १६ वर्षकी उम्र तक उसने बहुत कम पढा-लिखा था। उसके बाद वह एक जमीदारीका मैनेजर नियुक्त किया गया। इस समय उसने अपनी होशियारी और बहादुरी दिखाई। यहाँतक कि २३ वर्षकी उम्रमें वह वर्जिनियाकी फौजका प्रधान सेनापति बना दिया गया।

उस समय उत्तर अमेरिका इंग्लैंडके अधिकारमें था। लेकिन अमेरिकाके लोगो और इंग्लैंडके बीच संघर्ष चला करता था। अमेरिकामें कुछ कर लगाये गये। अमेरिकावासियोको वे ठीक नही लगे। इस समय और भी झगड़े थे। इससे आखिरमें अमेरिका और इग्लैंडके लोगोके मन इतने खट्टे हो गये कि लड़ाई शुरू हो गई। अंग्रेजी सेना कवायद सीखी हुई और तैयार थी। बेचारे अमेरिकी लोग देहाती थे। उन्हे हथियारोंका प्रयोग करना भी पूरी तरह नही आता था। वे फौजके अनुशासित जीवन और कष्टोंसे अपरिचित थे। ऐसे लोगोंको काबूमें रखने, उनसे काम लेकर अमेरिकाको स्वतंत्र करने और अंग्रेजोके बन्धनोसे मुक्त होनेका काम वाशिंगटनपर आया। लोगोंने उसको प्रधान सेनापति बनाया। उस वक्त वाशिंगटनने कहा — "मैं इस सम्मानके योग्य बिलकुल नही हूँ। फिर भी आप मुझे नियुक्त करते है तो मै लोगोंकी सेवाके लिए यह पद बिना वेतन स्वीकार करता हूँ।" ऐसे ही शब्द उसने अपने एक मित्रको भी लिखे थे; इसलिए ये सिर्फ कहने भरके लिए कहे गये हों, यह बात नही थी। दरअसल, वह खुद मानता था कि उसमें पर्याप्त बल नहीं है। फिर भी जब उसपर जिम्मेदारी आ ही गई, तब उसने हर तरहकी जोखिम उठाकर और रात-दिन काम करके लोगोके मनोंपर इतना प्रभाव डाला कि लोग उसकी आज्ञाका पालन तुरन्त करते थे, और वह जो भी कष्ट सहन करनेके लिए कहता, सहन कर लेते थे। आखिर अंग्रेजी फौजें हारी और अमेरिका स्वतंत्र हुआ। अमेरिकाके स्वतंत्र होते ही जॉर्ज वाशिंगटनने अपना पद छोड़ दिया। लेकिन लोगोके हाथ तो हीरा लगा था, वे उसे छोड़नेवाले न थे। इससे वह स्वराज्य प्राप्त होनेपर सन् १७८७ में अमेरिकाका पहला राष्ट्रपति बनाया गया। इस पदपर बैठनेके बाद भी उसके मनमें स्वार्थ साधनेकी बात कभी नही आई। लड़ाईके बाद अपनी थैलियाँ भरनेवाले ढोंगी देशभक्त हमेशा खड़े हो जाते है। इन सबको वाशिंगटनसे

दबकर रहना पड़ता था। १७९२–९३ में[1] वह फिर राष्ट्रपति चुना गया। उसने जिस तरह युद्धमें वीरता दिखाई थी, उसी तरह अपने राष्ट्रपति-कालमें देश-सुधारके कामोंमें, लोगोंका संगठन करनेमें और देशकी प्रतिष्ठा बढ़ानेमें भी दिखाई। एक लेखकने लिखा है कि "वाशिंगटन जैसे युद्धकालमें अग्रणी था, वैसे ही शान्तिकालमें भी अग्रणी था और उसने लोगोंके मनोंमें सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था।" उससे तीसरी बार भी राष्ट्रपति-पद लेनेके लिए आग्रह किया गया। लेकिन उसने इससे इनकार कर दिया और अपनी जमीदारीमें जाकर रहने लगा।

१४ दिसम्बर १७९९ को अकस्मात् बीमारीसे इस वीर पुरुषकी मृत्यु हो गई। वह कदमें बहुत ऊँचा था। उसकी ऊँचाई छः फुट तीन इंच मानी जाती है। उसके हाथ इतने लम्बे थे जितने कि उसके समयमें किसी अन्य व्यक्तिके नहीं थे। उसका स्वभाव हमेशा नम्र और दयालु था। उसकी देशभक्तिके फलस्वरूप आज अमेरिका इतना ऊँचा उठा है। और जब तक अमेरिका है तब तक वाशिंगटनका नाम भी रहेगा। हमारी प्रार्थना है कि भारत भी ऐसे वीर पुरुषोंको जन्म दे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–९–१९०५

१०४. पत्र: छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
सितम्बर ३०, १९०५

चि० छगनलाल,

चि० आनन्दलाल लिखता है कि मर्क्युरी लेनमें दफ्तर लेनेका निर्णय हुआ है। यदि यह बात सच है तो ऐसा किया नहीं जाना चाहिए। इस तरहके परिवर्तन करने हों तो पहले मुझसे पूछ लेना जरूरी है। मेरा खयाल है, ग्रे स्ट्रीट या फील्ड स्ट्रीटमें दफ्तर रखनेमें हर्ज नहीं है।

रामनाथको चि० जयशंकरके सुपुर्द कर दें, बशर्ते कि वह खुशीसे जाना चाहे। जयशंकरको उसके व्यापारमें कठिनाई होती होगी। मनसुखभाईका यहाँ आना संभव है। उनका एक लम्बा पत्र मेरे पास आया है। उससे प्रकट है कि वे यहाँ आनेको तड़प रहे हैं। वे केवल अपने माता-पिताकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें हैं।

क्लार्क्संडॉर्पसे पत्र आया है। उसे मैं साथ भेज रहा हूँ। वहाँसे रुपया बिलकुल नहीं आया है। तुमने रुपयेकी प्राप्ति किस अंकमें स्वीकार की है? यह लिखते-लिखते मुझे याद आ रहा है कि पहले क्रूगर्सडॉर्पकी रकम एक मुश्त स्वीकार की गई थी। फिर जब मैंने लिखा तो एक-एक व्यक्तिकी रकमें स्वीकार की गईं। इसमें कुछ गड़बड़ी होना संभव है।

तुम्हारा पत्र दोपहर बाद मिला।

मुझे दफ्तरको फिलहाल मर्क्युरी लेन ले जाना ठीक नहीं मालूम होता।

क्रूगर्सडॉर्पसे तुम्हारे पास कोई पत्र आया हो तो भेजना। मुझे जितना भी रुपया मिला है उसकी प्राप्ति स्वीकार कर ली गई है।

१. मूलमें १८९२–३ दिया है जो स्पष्टतया भूल है।

इसके साथ सुमार लतीफका पत्र भेज रहा हूँ। उसपर जो लिखना हो लिखकर मुझे भेज देना।

मोहनदास

[पुनश्च]

आज मैंने शेख मेहताबकी[1] लिखी पुस्तक देखी। उसके सम्बन्धमें 'इंडियन ओपिनियन' में कोई टिप्पणी न दें।

मोहनदास

[पुनश्च]

गुजराती सामग्री भेज रहा हूँ। वहाँ दो जीवनियाँ इकट्ठी हो गई हैं इसलिए इस बार नही भेजता।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२५४) से।

१०५. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अक्टूबर २, १९०५

प्रिय छगनलाल,

मुझे श्री किचिनने सूचित किया है कि तुम लोगोंने अपनी एक बैठकमें, सर्वसम्मतिसे, हेमचन्दको वर्खास्त करनेका निर्णय किया है। जब हेमचन्दने मुझे लिखा कि उसे बर्खास्तगीकी सूचना मिली है तब मैंने तुरन्त उसे आश्वासन दिया कि सूचना वापस ले ली जायेगी, और मैंने श्री किचिन और छगनलालसे पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। जब हेमचन्द कामपर रखा गया था, तब मेरी उससे कुछ बातचीत हुई थी, और मैंने कहा था कि उसको प्रेसके कामोंका प्रशिक्षण दिया जायेगा, और जबतक उसका व्यवहार और काम अच्छा रहेगा, उसे अपने-आपको स्थायी कर्मचारी ही समझना चाहिए। मैं हेमचन्दको अच्छी तरह जानता हूँ, और उससे भी अच्छी तरह उसके परिवारको। मैं उसे अच्छा और उपयोगी कर्मचारी मानता हूँ। अगर छापेखानेको कठिन परिस्थितियोंमे होकर गुजरना पड़ा तो वह उसका साथ न छोड़ेगा। लेकिन, इसके अलावा, जब मुझे हेमचन्दकी बर्खास्तगीकी बात मालूम हुई तब मैंने अनुभव किया कि मेरा वचन दाँवपर लगा है। इसी कारण मैंने उसे यह आश्वासन दिया था।

क्या मैं तुम लोगोसे कह सकता हूँ कि मै अब जो कुछ कह रहा हूँ उसको खयालमें रखते हुए तुम उसकी बर्खास्तगीके सम्बन्धमे अपने फैसलेको वापस लेकर मेरे आश्वासनकी पुष्टि करो? यदि भविष्यमे ऐसे सभी मामलोंमें किसी अन्तिम निर्णयपर पहुँचनेके पूर्व मेरी सलाह ले लेनेका खयाल रखा जायेगा तो मै इस बातको बहुत पसन्द करूँगा।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

१. स्कूलमें गांधीजीके एक साथी। देखिए **आत्मकथा** भाग १, अध्याय ६ और ७।

२

[इसके बादका अंश गुजरातीमें हाथसे लिखा गया है।]

चि० छगनलाल,

इस पत्रको पढ़ लेना। ऐसा ही सबको लिखा है। मालूम होता है, किचिनने इस मामलेको बड़ा रूप दे दिया है। मैंने उन्हें तार भी दिया है। तुम्हें बैठकमें उपस्थित रहना आवश्यक जान पड़े तो रहना।

लच्छीरामको अभी अखबार नहीं मिल रहा है। किस पतेपर भेजते हो, यह लिखना।

मणिलालको पानी भरनेके लिए छोटी बहँगी बनवा देनी चाहिए। जान पड़ता है, उसे पानी उठानेमें कठिनाई मालूम होती है।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च]

गबरू, बॉक्स ५७०९, कहते हैं कि उन्हें 'ओपिनियन' एक ही हफ्ते मिला। अब नहीं मिलता। समझमें नहीं आया कि मदरसा[1] [-कोषके दानियों]के नाम क्यों नहीं छापे गये? अब आगे ऐसा नहीं होना चाहिए।

गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त टाइप की हुई अंग्रेजी और स्वहस्त लिखित गुजराती दफ्तरी प्रति (एस० एन० ४३७७) से।

१०६. पत्र: छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अक्तूबर ५, १९०५

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे दफ्तरके सरनामा-छपे कागज और उनके साथ जोड़े जानेवाले कोरे कागज भेज देना। उनमें "तारका पता—'गांधी'" छपा देना। नाम पंजीकृत करवा लिया है। यह काम जल्दी पूरा कराना।

चि० आनन्दलालके लिए घरके सम्बन्धमें मेरा खयाल यह था कि वह चि० अभयचन्दका मकान लेना चाहता है। यदि उसे नया ही मकान बनवाना हो तो मेरी राय है कि फिलहाल खर्च न किया जाये। मैं इसी तरहका पत्र उसे लिखता हूँ।

श्री बीनके लिए घरमें रंग करा देनेमें ही छुटकारा देखता हूँ।

हेमचन्दसे बराबर काम लेना। वह कैसा चल रहा है, मुझे लिखते रहना। मेरी रायके बिना निकालने-रखने वगैराका फेरफार होना ही नहीं चाहिए। इस सम्बन्धमें कदम उठा चुका हूँ। ऑर्चर्ड और साम गुस्सा हुए हों तो उसकी चिन्ता नहीं।

मनसुखलाल फिलहाल तो हवापानी बदलनेके लिए ही आयेंगे। और यदि आये ही तो मैं उन्हें स्नान [चिकित्सा] वगैराके लिए कुछ समय ही अपने पास रखूँगा और फिर वे कुछ समय वहाँ रहेंगे।

१. दाभेल, गुजरातमें एक मुस्लिम स्कूल, जिसके लिए दक्षिण आफ्रिकामें चन्दा एकत्र किया जा रहा था।

कालाभाईने मुझे लिखा है कि वे हर महीने ३ पौंड देंगे। बसन्त पण्डितके बारेमें अखबारमें सूचना दे देना। क्या होता है, इसकी जानकारी मिलती ही नहीं।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च]

तुम अभी 'गजट'की सभी सूचनाएँ नहीं दे रहे हो। इस बारके 'गजटमें' १७०५ पृष्ठपर बहुत-सी सूचनाएँ हैं। सरसरी निगाहसे देखनेमें इतने लोगोंके बारेमें सूचनाएँ निकली हैं: (१) ऐय्यर (२) रामस्वरूप (३) बोघा (४) गीसीआवन (५) पारम (६) हुसैन आमद (७) रांदेरी। सारी सूचनाएँ तीनों भाषाओंमें आनी चाहिए; इसलिए अबसे 'गजट' बराबर देखते रहना। हेमचन्दको इसमें से कुछ काम सौंपा जा सकता है।

वहाँके सरनामा-छपे छोटे लिफाफे भेजना।

मोहनदास

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२५६) से।

१०७. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अक्टूबर ६, १९०५

चि० छगनलाल,

वीरजीकी चिट्ठी तुम्हारी जानकारीके लिए नत्थी कर रहा हूँ। इसे वापस मेरे पास भेज देना। तुमने अपनी एक चिट्ठीमें जो घटना लिखी थी, मैं उसको उसीके सम्बन्धमें लिख रहा हूँ[1]। तुम सारी बात उससे कर लेना। मैं उसे यह भी लिख रहा हूँ कि मैंने अपने नाम लिखा उसका पत्र तुम्हें भेज दिया है। उसका यह पत्र, मेरे जिस पत्रका उत्तर है[2] उसमें मैंने लिख दिया था कि अगर वह तुमको सन्तुष्ट नहीं कर सका तो मैं इस वर्षके बाद उसको नहीं रख सकूँगा।

तुम यह किसलिए कहते हो कि आनन्दलालको जो २० पौंड दिये गये, वे पानीमें गये? अगर बात ऐसी थी तो तुम्हें आनन्दलालसे कहना उचित था। तुम्हारे पिछले पत्रसे मुझे मालूम हुआ कि वह तुमसे ३० पौंड शहरमें कुछ सामान खरीदनेके लिए लेना चाहता था और टोंगाटसे खरीदनेका इरादा छोड़ चुका था।

देसाईका पत्र वापस भेज रहा हूँ। गलती जब तुम्हें मिल गई थी तब मेरे पास पत्र भेजनेकी आवश्यकता नहीं थी।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

नत्थी[3]
श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मारफत 'इंडियन ओपिनियन'
फीनिक्स

मूल अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२५७) से।

१, २ और ३. ये उपलब्ध नहीं हैं।

१०८. भारतमें अनिवार्य शिक्षा

जहाँ दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी शिक्षाको निरुत्साहित करनेका प्रत्येक प्रयत्न किया जा रहा है; स्वयं भारतमें ऐसे लक्षणोंकी कमी नहीं है जिनसे प्रकट होता है कि लोगोंके हृदयोंमें शिक्षा-प्रेमने गहरी जड़ पकड़ ली है, और सम्भवतः कुछ वर्षोंमें ही हम देखेंगे कि भारतके उन्नत भागोंमें अनिवार्य शिक्षा अपना ली गई है। मैकॉलेने शिक्षा-सम्बन्धी अपना प्रसिद्ध स्मरणपत्र १८३६ में लिखा था।[1] भारतमें शिक्षाको वास्तविक प्रोत्साहन तभी मिला था, परन्तु फिर भी "१९०१ की जनगणनामें पता लगा कि प्रति दस स्त्रियोंमें से केवल एक स्त्री साक्षर है।" बड़ौदा रियासतके लोकशिक्षा-निदेशक श्री एच० डी० काँटावालाने अगस्तके 'ईस्ट ऐंड वेस्ट' में एक मूल्यवान लेख लिखा है। उसके अनुसार १९०१ में, भारतमें सब वर्गोंके विद्यार्थियोंकी संख्या ३२,६८,७२६ थी, और उनके शिक्षणपर दो करोड़ रुपयेसे कम, अर्थात् कोई सवा तेरह लाख पौंड, व्यय हुए थे। इसमें से एक-चौथाईसे कुछ अधिक व्यय प्रारम्भिक शिक्षापर किया गया था। शिक्षापर व्यय सरकारकी सारी आमदनीका १.५ प्रतिशत है। यह स्वीकार किया जा चुका है कि भारतमे प्रारम्भिक शिक्षापर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है, और उसका प्रधान कारण यह है कि भारत-सरकारको अर्थाभावके कारण इससे अधिक व्यय करना असम्भव लगता है। हम फिलहाल इस प्रश्नपर विचार नहीं करेंगे कि शिक्षाकी अधिक प्रगतिके लिए धन क्यों उपलब्ध नहीं है, परन्तु हम यह कह सकते हैं कि यह मामला अब केवल सरकारके हाथमें नहीं रहा है।

जो लोग शिक्षाके सुफलका रसास्वादन कर चुके हैं वे उत्सुक हैं कि उसमें से उनके कम भाग्यशाली बन्धुओंको भी हिस्सा मिले। हालमें बम्बई नगर-निगमने अनिवार्य शिक्षा-पद्धतिको स्वीकार करते हुए एक प्रस्ताव पास किया है। महाविभव महाराजा गायकवाड़ने एक अमली कदम उठाया है; और श्री काँटावालाने अपने लेखमें प्रधानतया उसी प्रयोगकी चर्चा की है जो कि अनिवार्य शिक्षाके सम्बन्धमें इस समय बड़ौदामें किया जा रहा है। महाविभवने १८९२ में अपनी रियासतके कुछ भागोंमें अनिवार्य शिक्षा शुरू करनेका विचार प्रकट किया था और इस कामकी जिम्मेदारी श्री काँटावालाको सौंपी थी। उन्होंने स्वयं अपने मार्ग-प्रदर्शनके लिए निम्न सिद्धान्त स्थिर किये थे:

(१) किसी स्थानमें अनिवार्य शिक्षा-कानून लागू करनेसे पहले सरकार वहाँ शिक्षाके साधन उपलब्ध करे।
(२) अनिवार्य शिक्षा कानून बालकों और बालिकाओं, दोनोंपर लागू किया जाये।
(३) अनिवार्य शिक्षा कानून लागू करनेके लिए बालकोंकी आयु सातसे बारह और बालिकाओंकी सातसे दस वर्षतक रहे।
(४) पाठ्यक्रम प्रारम्भिक हो।

१. टॉमस बेबिंगटन मेकॉले (१८००–५९), भारत-सरकारकी सामान्य लोक शिक्षा-समितिके अध्यक्ष और गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषदके कानून-सदस्य थे। उन्होंने भारतमें अंग्रेजी शिक्षा शुरू करनेकी सिफारिश अपने २ फरवरी १८३५ के स्मरणपत्रमें की थी। किन्तु, जबतक विभिन्न विचार-पक्षोंमें इस सम्बन्धमें कोई निर्णय न हो गया तबतक सरकार भारतमें शिक्षाकी कोई एक-सी योजना आरम्भ नहीं कर सकी।

(५) अनिवार्य उपस्थिति वर्षमें १०० दिनसे अधिक नहीं हो।
(६) नियमके उल्लंघन-कर्त्ताओंके विरुद्ध कार्रवाई फौजदारी कानूनके अन्तर्गत नहीं, केवल दीवानी कानूनके अन्तर्गत की जाये और उनपर किये गये जुर्मानेकी वसूली भी दीवानी जाब्तेसे की जाये।

श्री काँटावालाने विशेष उत्साह दिखाया और वे उलझन-भरी गम्भीर कठिनाइयोंसे डरे नहीं। उन्होंने ऐसे दस गाँव चुने जो रियासतमें सबसे अधिक पिछड़े हुए थे (क्योंकि महाराजा गायकवाड़की इच्छा थी कि इस पद्धतिपर अधिकतम प्रतिकूल परिस्थितियोंमें अमल करके देखा जाये) और उनमें ऊपर लिखे सिद्धान्तोंको लागू किया। शिक्षा-निदेशकने गाँवोंके पटेलोंसे कई बार भेंट की। उन्होंने लोगोंके विरोधका सामना किस प्रकार किया और उनकी जिद-भरी भावनाओंको अपने विचारोंके अनुकूल कैसे बनाया, ये सब घटनाएँ बड़ी रोचक हैं। परन्तु यहाँ हम केवल इस प्रयोगका परिणाम, लेखकके अपने शब्दोंमें, बतायेंगे।

> इस प्रकार मैं बड़ौदा रियासतके सबसे पिछड़े हुए भागमें बहुत कम समयके भीतर अनिवार्य शिक्षा शुरू करनेमें समर्थ हो गया। मुझे इस योजनाको सफलतापूर्वक चलानेके लिए महीनों विशेष ध्यान देना पड़ा। वर्ष समाप्त होते-होते, अनिवार्य शिक्षाकी आयुके प्रायः सभी, अर्थात् ९९ प्रतिशतसे अधिक बच्चे स्कूलोंमें भर्ती हो गये। यह परिणाम ऐसा है जो इंग्लैंड तथा अन्य उन्नत देशोंमें भी प्राप्त नहीं हो सका है। इस कानूनपर सफलतापूर्वक अमल होनेसे महाराजाको, दस-दस नये गाँवोंके समूहोंमें अनिवार्य शिक्षा लागू करनेकी प्रेरणा मिली। अमरेली ताल्लुकेमें अनिवार्य शिक्षा बारह वर्षसे अधिक समय तक सफलतापूर्वक कसौटीपर कस कर देखी जा चुकी है, और सदा यह देखा गया है कि शत-प्रतिशत बच्चे स्कूलोंमें हाजिर रहे, और लोगोंने इसके विरुद्ध कभी कोई गम्भीर शिकायत नहीं की। हालमें महाराजाने एक योजना स्वीकृत की है कि रियासतके दो भागोंमें अनिवार्य शिक्षा कानून उन बच्चोंपर लागू किया जाये जिनके माता-पिताओंकी एक निश्चित वार्षिक आय है।

यह सफलता ध्यान देने योग्य है। फिर भी भारतके करोड़ों निरक्षर लोगोंका खयाल करते हुए यह एक छोटा-सा अंकुर-मात्र है। कोई भी यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि कालान्तरमें यह अंकुर कितना बड़ा हो जायेगा। इस प्रयोगसे हम दक्षिण आफ्रिकी लोगोंको भी कुछ-न-कुछ शिक्षा अवश्य मिलती है। हम विभिन्न सरकारोंसे भारतीय बालकोंके लिए उपयुक्त शिक्षाकी व्यवस्था करनेकी आशा करें, यह उचित ही है। जिन भारतीयोंकी स्थिति अन्य भारतीयोंसे अच्छी है और जो शिक्षाके लाभोंसे परिचित हैं, उनका कर्तव्य है कि यदि दक्षिण आफ्रिकी सरकारें उनकी सहायता नहीं करती तो वे स्वयं भारतीय बालकोंकी शिक्षाकी उपयुक्त व्यवस्था करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१०–१९०५

१०९. भारतके 'पितामह'[1]

भारतसे बदलेमें आये हुए समाचारपत्रोंसे हमें उन सभाओंकी खबर मिली है जो गत ४ सितम्बरको भारतके पितामह श्री दादाभाई नौरोजीका इक्यासीवाँ जन्मदिन मनानेके लिए देश-भरमें की गई थीं। हमारी नम्र सम्मतिमें, श्री नौरोजीकी भारतके प्रति की गई सेवाएँ उन सेवाओंसे बहुत अधिक है जो इंग्लैंडके "पितामह"[2] ने इंग्लैंडके प्रति की थी। श्री नौरोजीका काम अग्रणीका काम था। उन्होंने जब वह काम शुरू किया, तब निश्चय ही उनके सहायक बहुत कम थे। वे जिस त्याग और लगनसे अनुकूल और विपरीत — सभी परिस्थितियोंमें भारतके हितके लिए कार्य करते रहे, उसका जोड़ भारतमें कठिनाईसे मिलेगा; और क्या आश्चर्य कि उनको अपने करोड़ों देशवासियोंकी दृष्टिमें सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त है! यह बात अत्यन्त करुण और गौरवास्पद है कि अस्सी वर्षसे भी ज्यादा आयुका यह वृद्ध ब्रिटेनके एक निर्वाचन क्षेत्रमें लोगोंको मत देनेके लिए मनाता फिरता है — अपने यश या सम्मानके लिए नहीं, बल्कि भारतकी सेवा और अधिक करनेके लिए। यदि उत्तरी लैम्बेथके निर्वाचक श्री नौरोजीको फिर संसदका सदस्य चुन लेंगे तो इसमें उनका अपना ही असाधारण सम्मान होगा। हम भी भारतके करोड़ों लोगोंकी भाँति श्री नौरोजीके दीर्घायुष्य और स्वास्थ्यके लिए प्रार्थनाएँ करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१०–१९०५

११०. सर मंचरजीका अपमान

अभी हालमें कलकत्तामें सर मंचरजी भावनगरीका जो अपमान किया गया, उसे जानकर हमे भारी खेद हुआ है। बंग-भंग[3] के प्रश्नपर उनका मत [लोगोंके] मतसे भिन्न था; इस कारण कॉलेज चौकमें उनका पुतला जलाया गया। सर मंचरजी निश्चय ही अपना स्वतन्त्र मत रख सकते हैं, यद्यपि आजकल स्वतन्त्रताके उस मंदिर — ब्रिटिश लोकसभा — के सदस्योंको अपना वैयक्तिक मत रखनेकी स्वतन्त्रता क्वचित् दी जाती है। उस सभाका जो सदस्य भारतके हितमें अपने उत्साहका प्रमाण दे चुका है, उसका ऐसा खुला अपमान करना अबुद्धिमत्तापूर्ण — नहीं, मूर्खतापूर्ण है। भले ही सर मंचरजी और भारतीयोंका मत चाहे सदा न मिलता हो परन्तु वे इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि सर मंचरजीकी वफादारी सदा अपने देशके साथ रहती है और वे सदा हृदयसे उसका हित चाहते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय इस अपमानको विशेष रूपसे अनुभव करेंगे, क्योंकि वे यहाँके हजारों प्रतिनिधित्वहीन भारतीयोंके सच्चे मित्र सिद्ध हो चुके हैं। भारतीय किसी व्यक्तिका मूल्य उसके अंग्रेजोंके विश्वासघातकी

१. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ५४–५।

२. विलियम एवर्ट ग्लैड्स्टन (१८०९–९८), इंग्लैंडके प्रधानमन्त्री १८६८–७४, १८८०–५, १८८६ और १८९२–४। देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ११४–५।

३. प्रशासनिक सुविधाके नामपर बंगालको दो प्रान्तोंमें विभक्त कर दिया गया था, जिनमेंसे एकमें हिंदुओंकी प्रधानता थी और दूसरेमें मुसलमानोंकी। इस विभाजनसे सारे भारतमें विरोधका तूफान खड़ा हो गया, जो ब्रिटिश मालके बहिष्कारके रूपमें प्रकट हुआ। अन्तमें सन् १९११में विभाजन रद कर दिया गया।

भर्त्सना और तीखी निन्दा करनेके सामर्थ्यसे लगाने लगेंगे तो यह उनकी भारी भूल होगी। सर मचरजी सरीखे व्यक्तियोकी अधिक नरम सम्मितियोका प्रभाव उत्तेजनशील परिवर्तनवादी लोगोंकी तीव्र अत्युक्तियोंसे कही अधिक होता है। भारतको पूर्ण न्यायकी प्राप्ति केवल शाति-युक्त तर्कजनित समाधानसे हो सकेगी; और इस कारण सर मंचरजी अपने देशवासियोंकी कृतघ्नताके भाजन होनेके तमाम लोगोंमे सबसे कम अधिकारी है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१०–१९०५

१११. बहिष्कार

भारतसे हालमें आये हुए समुद्री तारो और अखबारोसे स्पष्ट है कि बंगालका बहिष्कार आन्दोलन यो ही अगौरवास्पद ढगसे बैठ नही जायेगा। यद्यपि अंग्रेजी मालके बहिष्कारके पीछे वहुत-कुछ जोर-जबर्दस्ती दिखाई देती है तथापि आन्दोलन इतना व्यापक है कि उससे पता चलता है कि वह जनताकी तीव्र भावनाका परिणाम है। बंग-भंगके विरुद्ध वर्तमान आन्दो-लनका परिणाम चाहे जो हो, बहिष्कारका प्रभाव भारतके लिए हितकर ही होगा। इससे देशी उद्योगोको आश्चर्यजनक प्रोत्साहन मिला है। हमारा विश्वास है कि ये उद्योग निरन्तर बढ़ते ही जायेंगे। यह परिणाम अप्रत्याशित है, परन्तु इसकी वाछनीयता तनिक भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। भारतकी महती आवश्यकता यही है कि राष्ट्रीय विशेषताओको आश्रय दिया जाये और सुधारा जाये। यदि केवल भारतीय वस्तुओंके प्रयोगका सकल्प यथासम्भव स्थिर रखा जाये तो राष्ट्रीय भावनाके विकासमें इसकी सहायता कुछ कम नही होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१०–१९०५

११२. डॉक्टर बरनार्डो

गत मास डॉक्टर बरनार्डोके देहान्तकी खबर दुनिया-भरमें तारोंसे भेजी गई। ये डॉक्टर कौन थे, यह जाननेकी उत्सुकता हमारे पाठकोको अवश्य ही होगी। हम ऐसा समझकर उन भले डॉक्टरका जीवन वृत्तान्त इस अंकमें दे रहे है।

डॉक्टर बरनार्डो अनाथोके नाथ या पिता माने जाते थे। वे अपने जीवनके प्रारम्भ-कालमें बिना माँ-बापके बच्चोको देखकर बहुत निराश होते थे। परन्तु उनके पास कुछ भी साधन नही था। वे स्वयं गरीब आदमी थे। फिर भी उनके मनमें यह विचार आया कि अनाथ बच्चोंका पालन-पोषण करके उसीमें से अपना गुजर-बसर भी किया जाये।

"ऐरनकी चोरी करे, करे सुईको दान", इस कहावतके अनुसार हमारी इच्छा यह रहती है कि पहले बहुत-सा पैसा कमा लें और बादमें उसका अच्छा उपयोग करें। किन्तु ऐसा करते-करते बहुतोका पूरा जीवन ही निकल जाता है। कुछ लोग जब पैसे कमा लेते है तब अपने मनमें किया हुआ संकल्प भूल जाते है। दूसरे कुछ लोग पैसा कमा लेनेपर उन पैसोका अच्छा उपयोग क्या करें, यह नही समझ पाते और फिर उसे तरह तरहके कामोमें बरबाद करके

अच्छे काममें खर्च करनेका संतोष मान लेते हैं। चूँकि कोई अच्छा काम करनेका अनुभव नही होता; इसलिए वे स्वयं उनका कोई सदुपयोग नही कर पाते।

यह सब बुद्धिमान डॉक्टर बरनार्डोने देख लिया था। इससे उन्होंने यह विचार किया: "मेरा मन तो साफ है। जो लोग मुझपर विश्वास करके मुझे पैसा देंगे वे समझ सकेंगे कि मुझे अपना पेट भी इसके सहारे भरना चाहिए। लेकिन यदि मैं विना माँ-बापके बालकोंका पालन-पोषण करूँगा तो उनकी अन्तरात्मा दुआ देगी। और लोग भी देख सकेंगे कि मेरा इरादा पैसा बटोरनेका नही है।" इस तरह दृढ़ सकल्प होकर ये बहादुर डॉक्टर काममें जुट गये और उन्होंने पहला अनाथाश्रम लन्दनके स्टीवेनी कॉजवेमें खोला। प्रारम्भमें तो सब लोगोंने उसका विरोध किया और कहने लगे कि यह तो धोखा देकर पैसे पैदा करनेका रास्ता निकाला गया है। डॉक्टर बरनार्डो इससे निराश नही हुए। उन्होंने अपनेपर श्रद्धा रखनेवाले लोगोसे चन्दा लेना शुरू किया। धीरे-धीरे बच्चे जमा होने लगे। वे आवारा बननेके बजाय पढ़े-लिखे, मेहनती तथा ईमानदार बने और रोजगारमें लग गये। इस प्रकार जितने भी बच्चे पले उन सभीने डॉक्टर बरनार्डोके आश्रमकी ख्याति बढ़ाई। उन बच्चोने महसूस किया कि स्वयं डॉक्टर बरनार्डो उनके माता-पिताकी अपेक्षा अधिक हिफाजत करते हैं। डॉक्टरने ऐसे आश्रम बढ़ाये और अन्तमें लन्दनसे छः मीलकी दूरीपर जंगलमें, एक गाँव बसाया। उस गाँवमें अच्छे मकानो और गिरजा-घर आदिका निर्माण किया और वह स्थान इस समय इतना प्रसिद्ध हो गया कि बहुत लोग उसको ऐसी पवित्र भावनासे देखने जाते हैं मानो तीर्थयात्रा करने जा रहे हों। उसकी ख्याति इतनी बढ़ गई है कि संसारके बहुत-से भागोंमें उस प्रकारके आश्रम बनाये गये हैं। इस प्रकार डॉक्टर बरनार्डोने अपनी जिन्दगीमें ५५,००० बालकोंकी परवरिश की थी। कुछ दुष्ट माँ-बाप इस सुविधाका अनुचित लाभ भी उठाते थे। वे अपने बच्चोंको रातमें मौका देखकर डॉक्टर बरनार्डोके अहातेमें डाल जाते थे। डॉक्टर बरनार्डो इससे भी हार नही मानते थे। वे उन बच्चोकी यत्नसे परवरिश करते और जब माँ-बाप अपने बालकोंको वापस माँगने आते तब उनको सौप देते थे। हर साल इन बच्चोंका मेला लन्दनके विशाल अल्बर्ट हालमें लगता है। हजारों मनुष्य इस मेलेको पैसे देकर देखनेके लिए हर साल आते हैं। डॉक्टरके देहान्तके बाद पता चला है कि उन्होंने अपने जीवनका ७०,००० पौंडका बीमा करवाया था। वसीयतनामेमें वह लिख गये हैं कि यह सारा धन उनके स्थापित किये हुए आश्रमोंके संचालनमें खर्च किया जाये।

डॉक्टर बरनार्डो ऐसे महान पुरुष थे। वे स्वयं धार्मिक और अत्यन्त दयालु थे। बीमा कराना आदि विचार हमारे धार्मिक मतसे अलग पड़ते हैं। फिर भी यह हमें कबूल करना चाहिए कि पश्चिमके उस प्रकारके रिवाजके अनुसार डॉक्टरने जो किया वह सूझ-बूझका काम था।

एक व्यक्ति गरीब होते हुए अपने उत्साह और अपने दया-भावके बलपर कितना काम कर सकता है, इसका डॉक्टर बरनार्डोने इस युगमें सर्वोत्तम उदाहरण उपस्थित किया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-१०-१९०५

११३. एक भारतीय कवि

श्री वार्डने हाली साहबके काव्योंका अनुवाद अंग्रेजीमें करके उनका नाम प्रसिद्ध किया है। कहा जाता है कि हाली साहबकी बराबरीका दूसरा कोई कवि नही है। उनका पूरा नाम मौलवी सैयद अलताफ हुसैन अनसारी है। उनका जन्म दिल्लीके पास पानीपतमें हुआ था। उनकी अधिकतर कविताएँ उर्दूमें हैं, यद्यपि फारसीमें भी उन्होने बहुत लिखा है। १८८७ की जयन्तीके[1] मौकेपर उन्होंने ऐसी उत्कृष्ट कविता लिखी कि वह सारे उत्तर भारतमे गूंज उठी। उन्होने जो कुछ लिखा है वह मौज-शौकके सम्बन्धमे नही लिखा बल्कि इस जमानेमे मुसलमानोका क्या फर्ज है, हिन्दू और मुसलमान दोनो आपसमे कैसा बरताव रखे और खुदाको किस तरह पहचाना जाये इत्यादि उपयोगी विषयोपर लिखा है। लाहौरके सेठ अब्दुल कादिर लिखते हैं कि वे जब मदरसेमे थे तब उनका काव्य पढते थे और जब बड़े हुए तब भी पढ़ते थे। वे उसे अपनी सभाओमे भी गाते थे और अब अपनी अंजुमनोमें भी सुनते है; फिर भी वे उसे पढ़ते और सुनते थकते नही है। हाली साहबने शेख सादीका[2] जीवन-वृत्तान्त बहुत सुन्दर भाषामें लिखा है। प्रोफेसर मॉरिसन उनकी रचनाओके सम्बन्धमे लिखते है कि अमीर मुसलमानोने कौमके लिए जितना किया है उससे ज्यादा इस एक गरीब कविने किया है। सरकारने उनकी कौमके प्रति की गई सेवाओंकी कद्र करनेके लिए उनको शम्स-उल-उलेमाका खिताब दिया है। हमें दुःख है कि उनके उर्दू काव्य हमारे हाथमे नही है। लेकिन हम अपने पाठकोसे सिफारिश करते हैं कि वे उनके काव्य मँगवा कर पढे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१०–१९०५

११४. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अक्तूबर ७, १९०५

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। कार्यालय बदल दिया, यह ठीक किया। प्लेगके बाबत स्वच्छता रखनेकी सीख देते रहना। हेमचन्दने कहाँ रहना तय किया है, सो लिखना। उसके सम्बन्धमे हमारे बीच गलतफहमी हो गई है। लेकिन मैंने तुम्हे संक्षेपमें बताया था, इसलिए मैं अपना दोष मानता हूँ। वेस्टको पत्र लिखा है। अधिक उसमें देख लेना। हेमचन्द काममें पूरा सन्तोष देता है या नहीं, लिखना। रामनाथ कहाँ है? उसे चि० जयशंकरके सुपुर्द किया या नही? जयशंकरके पास आदमियोंकी बड़ी तंगी है। साथके पतेपर 'ओपिनियन' भेजो। उसके पैसे मैं यहीं वसूल करूँगा। मेरे खाते नामे लिख लेना।

मर्क्युरी लेनमे कार्यालय ले जानेसे क्या हिन्दी ग्राहकोंकी संख्यामें फर्क नही पड़ेगा? अब्दुल-कादिर सेठने कुछ कहा? फील्ड स्ट्रीट या ग्रे स्ट्रीटमें कार्यालयके लिए जगह क्यो नही ढूँढ़ी?

गुजराती सामग्री आज भेज रहा हूँ। ज्यादा कल भेजूंगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२५८) से।

१. महारानी विक्टोरियाके शासनकी स्वर्ण जयन्ती।

२. १३वीं शताब्दीका एक फारसी महाकवि।

११५. मानपत्र[1] : लॉर्ड सेल्बोर्नको

[पॉचेफस्ट्रूम
अक्तूबर ९, १९०५ से पूर्व]

परमश्रेष्ठकी सेवामें,

हम नीचे, हस्ताक्षर करनेवाले, पॉचेफस्ट्रूम-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिनिधि, इस ऐतिहासिक नगरमें परमश्रेष्ठका हार्दिक और निष्ठाके साथ स्वागत करते हैं।

हम आशा करते हैं कि आप पॉचेफस्ट्रूमके लोगोंके बीच अपने निवासकी सुखद स्मृतियाँ अपने साथ ले जायेंगे।

पॉचेफस्ट्रूममें हम जिन कठिनाइयोंसे पीड़ित हैं वे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए ट्रान्सवालमें सर्वत्र एक जैसी हैं। पॉचेफस्ट्रूममें ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध, उनके रहन-सहनके तरीके और उनकी व्यापारिक जगहोंकी देखभालके बारेमें, एक अभियोग[2] लगाया गया है। इन जगहोंका निरीक्षण करने और उनके बारेमें स्वयं निष्कर्ष निकालनेके लिए हम परमश्रेष्ठको सादर निमन्त्रित करनेका साहस करते हैं। हम यथासम्भव अपना आचरण स्थानीय रीति-रिवाजोंके अनुसार बनाने और लोक-भावनाको सन्तुष्ट करनेके लिए अत्यन्त चिन्तित हैं। हम केवल इतना ही चाहते हैं कि वर्ग-विधान बनाये बिना, जरूरी समझे जानेवाले सामान्य सफाई तथा अन्य नियमित सामान्य विनियमोंके अन्तर्गत, हमें यात्रा, व्यापार, निवास और सम्पत्तिके स्वामित्वकी स्वतन्त्रता हो।

हम परमश्रेष्ठकी सेवामें इस सम्पूर्ण विश्वासके साथ उपस्थित हो रहे हैं कि श्रीमानके हाथों हमें न्याय मिलेगा।

हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप परम दयालु महामहिम सम्राट और सम्राज्ञीकी सेवामें हमारे भक्तिपूर्ण भाव निवेदित कर दें।

एस० डी० रॉबर्ट, अध्यक्ष
ई० एच० गेट्टा
ई० एम० पटेल
एम० ई० नानाभाई
हाजी उमर
ए० ई० गंगाट
ए० एम० कासिम
हासिम तैयब
ए० जी० साले महम्मद
इब्राहीम ब्रदर्स
मूसा हसन
डी० आई० वरियावा
ए० रहमान, मन्त्री

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१०-१९०५

१. यह मानपत्र पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय संघ द्वारा दिया गया था। ऐसे ही मानपत्र रस्टेनबर्ग, क्लार्क्सडॉर्प और क्रूगर्सडॉर्पमें दिये गये थे। देखिये, 'लॉर्ड सेल्बोर्नकी यात्रा', इंडियन ओपिनियन, १४-१०-१९०५।

२. पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार संघ द्वारा।

११६. पॉचेफस्ट्रूमके भारतीयोंका वक्तव्य[1]

[पॉचेफस्ट्रूम
अक्टूबर ९, १९०५ से पूर्व]

परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन है कि,

यदि हमें यह पता न होता कि तथाकथित एशियाई-विरोधी पहरेदार संघकी ओरसे आपकी सेवामें, विशेषतः पॉचेफस्ट्रूमके ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें, प्रार्थनापत्र पेश किया जायेगा तो हम परमश्रेष्ठको किसी भी प्रकारका कष्ट न देते; विशेषतः इस कारण कि हम जानते हैं कि परमश्रेष्ठ शीघ्र ही जोहानिसबर्गमें ब्रिटिश भारतीय संघके एक शिष्टमण्डलसे मिलनेवाले हैं।

श्री लवडेने कहा है कि पॉचेफस्ट्रूममें नेटालसे गिरमिटिया भारतीय उमड़े चले आ रहे हैं। इसका हम प्रबल प्रतिवाद करना चाहते हैं। हममें से कुछ लोग नेटालके कानूनसे परिचित हैं, और हम जानते हैं कि किसी भी गिरमिटिया भारतीयके लिए बच कर आना प्रायः असम्भव है। कुछ भी हो, इस बयानको सच्चा सिद्ध करनेके लिए अभीतक एक भी उदाहरण नहीं दिया गया है।

जोहानिसबर्गके महापौरने, जब वे यहाँ थे, एक और बात कही थी। उन्होंने कहा बताते हैं कि जहाँ एशियाइयोंको युद्धसे पहले व्यापारियोके उन्नीस परवाने दिये गये थे, वहाँ अब उनको छियानवे परवाने व्यापारियोके और सैंतीस फेरीवालोंके प्राप्त हैं। जहाँतक व्यापारियोंका सम्बन्ध है, यह कथन सत्य नहीं है। हमने युद्धसे पहले ब्रिटिश एजेंटको पॉचेफस्ट्रम नगरके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी एक सूची दी थी, और तब इस नगरमें ब्रिटिश भारतीयोकी बाईस दूकानें थीं। जिलेके अन्य स्थानोंमें जो दूकानें थी सो अलग। ब्रिटिश एजेंटको जो सूची दी गई थी उसकी नकल हमारे पास है और हम आज भी न केवल उनके नाम बता सकते हैं, बल्कि प्रत्येकका पता भी दे सकते हैं। श्री गॉश युद्धसे पहलेके उन्नीस परवानोंके सिलसिलेमें अब व्यापारियोंके छियानवे परवानोंका जिक्र करते हैं। हम समझते है कि उनका मतलब यह है कि ये छियानवे परवाने पॉचेफस्ट्रूम नगरके ही हैं। यदि ऐसी बात हो तो यह सर्वथा असत्य है। आज इस नगरमें ब्रिटिश भारतीयोंकी केवल चौबीस दूकानें हैं। हम यह बात पूरी जिम्मेदारी और जानकारीके साथ कह रहे हैं, और अपने निन्दकोंको इसे अन्यथा सिद्ध करनेकी चुनौती देते हैं।

तीसरी बात जो पॉचेफस्ट्रूममें हमारे विरुद्ध कही गई है वह यह है कि हमारे मकान और दूकान गन्दे रहते हैं। यों तो इनकी हालत देखनेसे अपने आप मालूम हो जाता है, परन्तु जब यह आक्षेप किया गया तब हमने अपनी जगहें पॉचेफस्ट्रूमके जिला-सर्जनको दिखलाई थीं और उसने यह रिपोर्ट दी थी :

> मुझे यह कहते खुशी होती है कि विभिन्न अहातोंको देखनेपर, मेरे मनपर हर जगहका बहुत अच्छा असर पड़ा। मैंने अन्दरसे और बाहरसे भी देखा है। कुल बातोंका खयाल करते हुए, पीछेके ऑगन बिलकुल साफ और स्वास्थ्यकर हैं। मैंने कूड़ेके ढेर लगे नहीं

१. यह पॉचेफस्ट्रूम भारतीय संघके मन्त्री श्री अब्दुल रहमानने लॉर्ड सेल्बोर्नको मानपत्र देनेके बाद पढ़कर सुनाया था।

देखे। मुझे मालूम हुआ कि सारा कूड़ा रोजाना ठेकेदार ले जाया करता है। शहरके दूसरे हिस्सोंके समान यहाँ बाल्टी-पद्धति काममें लायी जाती है। इसकी भी कमाईका प्रबन्ध है, जो सफाई विभाग द्वारा किया जाता है। मैंने जो-कुछ देखा उसमें मैं कोई दोष नहीं बता सकता। जहाँतक सोनेके स्थानकी बात है, मुझे कोई भीड़-भाड़ दिखलाई नहीं पड़ती। प्रत्येक व्यापार-स्थानके पीछे, उससे अलग, मैंने एक प्रकारका भोजनगृह-सा देखा, जिसमें ५ से ८ आदमियों तक के बैठनेका स्थान है और हरएकमें उसका रसोईघर है। ये सब भी साफ-सुथरे रखे जाते हैं।

हमने इन बातोंका जिक्र यह दिखानेके लिए किया है कि हमें कैसी विपरीत परिस्थितियोंका सामना करना पड़ रहा है, और हमारे विरुद्ध कैसी-कैसी गलत बातें कही जाती हैं। हम निःसंकोच कह सकते है कि इस सारे एशियाई-विरोधी आन्दोलनका कारण व्यापारिक ईर्ष्या है। गोरे दूकानदारोंके साथ अनुचित प्रतिस्पर्धामे उतरनेकी हमारी तनिक भी इच्छा नहीं है।

हमारे रहन-सहनके तरीकोके विरुद्ध बहुत-कुछ कहा गया है। हमें इस बातका अभिमान है कि हमारी आदतें सीधी-सादी और संयत हैं, और यदि उनके कारण हमें प्रतिस्पर्धी गोरे व्यापारियोंकी तुलनामें कोई लाभ हो जाता है तो हम किसी प्रकार यह नहीं समझ सकते कि हमारी निन्दा करने और हमें गिरानेके लिए उसका उपयोग हमारे विरुद्ध क्यों किया जाता है। जो लोग हमारी निन्दा करते है वे इस प्रसगमें यह बिलकुल भूल जाते है कि गोरे व्यापारियोंको अनेक ऐसे लाभ होते है जिनको हम स्वप्नमें भी प्राप्त नही कर सकते। उदाहरणार्थ, यूरोपीयोके साथ उनके सम्बन्ध, उनकी अंग्रेजी भाषाकी जानकारी और उनकी अच्छी संगठन-शक्ति। इसके अतिरिक्त, हम अपना व्यापार, केवल इस कारण कर सकते है कि गरीब गोरोंकी हमारे प्रति सद्भावना है और हम गरीबसे गरीब ग्राहकोंको सन्तुष्ट कर सकते हैं। हमें थोकफरोश यूरोपीय व्यापारियोंकी सहायता भी प्राप्त है। कहा गया है कि हमारे मुकाबलेके कारण बहुत-सी यूरोपीय दूकानें बन्द हो गई। हम इसका खण्डन करते हैं। पहली बात तो यह है कि जो दूकाने बन्द हुई है उनमें से कई ऐसी थी कि उनसे सम्भवतः हमारी स्पर्धा हो ही नहीं सकती थी; जैसे कि नाइयोंकी दूकानें आदि। कुछ साधारण माल बेचनेवाली दूकानें भी अवश्य बन्द हुई है, परन्तु उनके बन्द होनेका सम्बन्ध एशियाई मुकाबलेके साथ जोड़ना वैसा ही अनुचित है जैसा कि इस शहरमें कुछ एशियाई दूकानोके बन्द होनेका सम्बन्ध यूरोपीय मुकाबलेके साथ जोड़ना। इस समय सारे दक्षिण आफ्रिकामें व्यापारिक मन्दी है, और इसका फल यह हुआ है कि युद्धके तुरन्त पश्चात् आवश्यकतासे अधिक जो व्यापार शुरू कर दिये गये थे वे समाप्त हो गये, क्योंकि उन्हें भारी अपेक्षाओंके आधारपर शुरू किया गया था, जो कभी पूरी नही हुईं।

क्या हम यह निवेदन कर सकते हैं कि हमारे विरुद्ध बहुत-सा आन्दोलन असली ब्रिटिश प्रजाजनों द्वारा नही किया जा रहा, प्रत्युत उन विदेशियों द्वारा किया जा रहा है जिन्हे वस्तुतः हमसे बहुत कम शिकायत हो सकती है। हमको नगरसे निकालनेके लिए जो नीति अपनाई गई है वह संताप और अपमानोकी नीति है, जो तुच्छ होनेपर भी इतने कटु है कि हम उन्हें बहुत ज्यादा महसूस करते हैं।

डाकघरोंमें तनिक भी कारणके बिना हमारे लिए पृथक् खिड़कियाँ नियत कर दी गई है। जिस उद्यानको "सार्वजनिक" उद्यान कहा जाता है और जिसकी सार-सँभाल अन्य नागरिकोके साथ-साथ हमसे भी वसूल किये गये करोसे की जाती है, उसकी खुली हवामें साँसतक

लेना हमारे लिए निषिद्ध है। हम इन उदाहरणोंका जिक्र परमश्रेष्ठका ध्यान उस विषम स्थितिकी ओर खींचनेके लिए कर रहे है जिसमें हम, निर्दोष होनेपर भी, डाल दिये गये है। हमें लांछित और अपमानित करनेका कोई भी अवसर हाथसे जाने नही दिया जाता। हम ऐसे अन्य उदाहरण देकर परमश्रेष्ठको परेशान करना नही चाहते। परन्तु हमारा निवेदन यह है कि ब्रिटिश सरकारसे यह आशा रखनेका हमें अधिकार है कि वह इस अपमानसे हमारी रक्षा करेगी और हमारे लिए उस स्वतन्त्रताको सुनिश्चित करायेगी जिसके उपभोगके हम, राजभक्त ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे, जहाँ-कहीं भी ब्रिटिश ध्वज फहराता है वहाँ सर्वत्र, अधिकारी है।

परमश्रेष्ठने हमारा निवेदन धैर्यपूर्वक सुना, इसके लिए हम उनका नम्रतापूर्वक धन्यवाद करते है, और अन्तमें आशा करते है कि परमश्रेष्ठके इस नगरमें पधारनेके फलस्वरूप हमारी स्थिति सुधरेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१०-१९०५

११७. लॉर्ड सेल्बोर्न और ट्रान्सवालके भारतीय

परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तने अपने ट्रान्सवालके दौरेमें, इस उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें दो बहुत महत्त्वपूर्ण भाषण दिये है। इनमें उनका पॉचेफस्ट्रूमका भाषण, जो अन्यत्र प्रकाशित किया गया है, अधिक महत्त्वपूर्ण है। लॉर्ड सेल्बोर्नने उसमें बताया है कि उन्होने अपने अल्पवासमें इस प्रश्नका अध्ययन किया है। उन्हें सरकारकी प्रतिष्ठा बहुत प्यारी है, और वे मानते है कि युद्धसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंको जो वचन दिये गये थे वे पूरे करने होंगे। यह देखकर हमें और भी प्रसन्नता हुई कि लॉर्ड महोदयने भारतीय घोषणा[1] का अर्थ यह लगाया है कि उससे सारी दुनियामें भारतीयोके पूर्ण ब्रिटिश प्रजाके अधिकार सुरक्षित होते है। इस सबके लिए, और इससे भी बहुत अधिकके लिए, हम सचमुच परमश्रेष्ठके कृतज्ञ है। जब परस्पर-विरोधी स्वार्थोंके बीच न्याय करनेकी इतनी स्पष्ट इच्छा विद्यमान है तब इस आशाके लिए भी काफी गुंजाइश है कि निकट भविष्यमें इस कठिन समस्याका ऐसा हल निकल आयेगा, जो सबको स्वीकृत होगा।

परन्तु एक बातसे, जिसका लॉर्ड सेल्बोर्नने वचन दिया बताते है, हमें बड़ी बेचैनी हो रही है। खबरके अनुसार, उन्होंने ये शब्द कहे :

> **युद्धसे पहले जो भारतीय यहाँ नहीं थे उन्हें यहाँ तबतक नहीं आने दिया जायेगा जबतक आपकी अपनी संसद नहीं हो जायेगी, और आप अपनी सम्मति अपने प्रतिनिधियों द्वारा प्रकट नहीं कर सकेंगे। यह वचन मैं आपको आपके गवर्नर और उच्चायुक्तकी हैसियतसे देता हूँ।**

हमें निश्चय है कि परमश्रेष्ठने जब यह वचन दिया तब वे इसकी पूर्तिके परिणामोका अन्दाज भली प्रकार नही लगा सके होंगे। जो भारतीय इस देशमें पहलेसे बसे हुए हैं और अबसे आगे जिनके आनेकी सम्भावना है, उनमें फर्क करनेकी परमश्रेष्ठको बड़ी चिन्ता है।

१. महारानी विक्टोरियाकी १८५८की घोषणा।

उन्होंने अपने श्रोताओंको पुराने बसे हुए भारतीयोंके साथ उचित व्यवहार करनेकी आवश्यकता समझाई। अब, भारतीय व्यापारी अपनी विश्वसनीय मुंशियों, प्रबन्धकों और अन्य विश्वासी कर्मचारियोंकी आवश्यकताकी पूर्ति भारतसे ही कर सकते हैं, इस सचाईका विश्वास करवानेके लिए इसका जिक्र-भर कर देना काफी है। इन सुविधाओंके बिना, उनके लिए सुरक्षापूर्वक व्यापार चलाते रहना प्रायः असम्भव है। तो क्या हम यह समझें कि जबतक ट्रान्सवालकी भावी संसद दूसरा निर्णय नहीं कर देती तबतक भारतीय व्यापारको, विश्वासी आदमियोंके अभावमें संकटग्रस्त रख, घुटने टेक देनेके लिए विवश किया जायेगा?

परमश्रेष्ठने यह भी कहा है कि भारतीयोंको गोरोंके साथ अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा करते चले जाने देना व्यावहारिक राजनीतिज्ञताकी बात नहीं है। हमने इस प्रस्तावपर इस पत्रमें बहुधा विचार किया है, और हम समझते हैं कि हम इसका खोखलापन दिखला चुके हैं। इसमें जो कुछ सत्य है उसे भारतीय मान चुके हैं, और जो सत्य नहीं है, उसका एकमात्र कारण व्यापारिक ईर्ष्या है। यह स्पष्ट कर दिये जानेके बाद कि नये परवाने देनेका अधिकार, उचित संरक्षणोंके साथ, प्रधानतया व्यापारियों द्वारा गठित स्थानीय निकायोंको ही होगा, भारतीय स्थितिका औचित्य अत्यन्त विद्वेषी व्यक्तियोंके अतिरिक्त, सबको स्पष्ट हो जाना चाहिए। परन्तु वे एशियाई-विरोधी लोग, जो एक-एक भारतीयको इस उपनिवेशसे निकाल बाहर करने पर तुले हुए हैं, तबतक सन्तुष्ट नहीं होंगे जबतक उन्हें भारतीयोंका जीवन बिलकुल असह्य बनानेमें सफलता नहीं मिल जायेगी। लॉर्ड सेल्बोर्नसे इस प्रकारके प्रयत्नोंके विरुद्ध अपनी रक्षाकी आशा करना भारतीयोंका अधिकार है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१०–१९०५

११८. लॉर्ड सेल्बोर्नका आगमन

सप्ताहका अधिकांश नेटालमें[1] व्यतीत करनेके बाद लॉर्ड सेल्बोर्न आज डर्बन पहुँच रहे हैं। ब्रिटिश भारतीय समाजके अन्य सदस्योंके साथ-साथ हम अत्यन्त विनम्र भावसे उनका नम्रतापूर्वक स्वागत करते हैं। लॉर्ड सेल्बोर्नको दक्षिण आफ्रिकामें आये थोड़ा ही समय हुआ है; परन्तु उनको अभीसे सभी श्रेणियोंके लोगोंका यह विश्वास प्राप्त हो गया है कि वे बिना किसी भय या मुलाहिजेके प्रत्येक व्यक्तिके प्रति अपना कर्तव्य निभायेंगे। परमश्रेष्ठ अनेक प्रकारसे नेटालको अन्य ब्रिटिश उपनिवेशोंसे भिन्न पायेंगे। नेटालमें अध्ययनके लिए कुछ मनोरंजक समस्याएँ उपस्थित हैं। इसका कारण यह है कि उसमें वतनी लोगोंकी बड़ी आबादी है और गोरे लोग अपेक्षाकृत बहुत कम संख्यामें हैं, जो अपने मुख्य उद्योग-धंधोंके लिए भारतीय गिरमिटियोंकी बहुत बड़ी आबादीपर निर्भर हैं। इन गिरमिटिया भारतीयोंकी उपस्थितिने स्वभावतः व्यापारी वर्गके भारतीयोंको इस उपनिवेशमें आकर्षित किया है। हमारा विश्वास है कि लॉर्ड सेल्बोर्न अपने अल्पकालिक प्रवासमें अपने बहुमूल्य समयके कुछ क्षण उन नेटालवासी ब्रिटिश भारतीयोंको समझनेमें लगायेंगे, जो सभीकी रायमें सम्राटकी प्रजाके सर्वाधिक राजभक्त और कानूनका पालन

१. स्पष्टतः, भूलसे "ट्रान्सवाल"के स्थानपर "नेटाल" लिखा गया है। लॉर्ड सेल्बोर्नने ट्रान्सवालके भ्रमणमें इस सप्ताहका प्रारम्भिक भाग व्यतीत किया था। देखिए पिछला शीर्षक।

करनेवाले अंग हैं। शेष भारतीय समाजके साथ हम भी यह आशा करते हैं कि परमश्रेष्ठ तथा उनका परिवार इस सुरम्य उपनिवेशमें रहते हुए प्रसन्नता अनुभव करेंगे और अपने साथ इसकी मधुर स्मृतियाँ ले जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१०–१९०५

११९. गिल्टीवाला प्लेग

प्लेगने अड्डा जमा लिया है। यह एक वार्षिक दूत है, जो वर्ष-प्रतिवर्ष आकर अन्धकार, गन्दगी और अति घनी बस्तीके विरुद्ध चेतावनी दे जाता है। यह जहाँ-कहीं एक बार दिखाई पड़ा वहाँ अबतक, बिना चूके, थोड़ी-बहुत नियमिततासे फिर-फिर आता रहा है। खबर मिली है कि यह चिन्दे[1] तक पहुँच गया है। वहाँसे डर्बन बहुत दूर नहीं है। इसलिए प्रत्येक अच्छे नागरिकको चाहिए कि वह इस राक्षसको पास न फटकने देनेके लिए आवश्यक एहतियात रखे। इस सचाईको छिपाना नहीं चाहिए कि भारतीय अन्य जातियोंकी अपेक्षा प्लेगकी विनाश-लीलाके शिकार ज्यादा होते हैं, ठीक वैसे ही जैसे गोरोको मोतीझरा होनेकी सम्भावना भारतीयोकी अपेक्षा ज्यादा रहती है। इस कारण भारतीयोंको दुगुनी सावधानी रखनी चाहिए। घरों और दूकानोके आसपासके स्थान पूरी तरह साफ रखे जाने चाहिए। लोगोंको जितनी भी हो सके उतनी रोशनी, धूप और हवा मिलनी चाहिए; और सभी सन्दिग्ध मामले तुरन्त ही अधिकारियोको सूचित कर देने चाहिए। [रोग एक बार आ चुकनेके बाद बहुत-सा खर्च करने, बल्कि यों कहना चाहिए धन बरबाद करनेकी अपेक्षा ये कुछ सरल सावधानियाँ बरतना कहीं अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगा। इस सम्बन्धमें भारतीय समाजके नेताओंका कर्तव्य स्पष्ट है। प्रत्येक शिक्षित भारतीयको एक अनुपम अवसर प्राप्त है; वह स्वास्थ्य और सफाईका प्रचारक बन सकता है।]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१०–१९०५

१२०. नमक-कर

अफवाह है कि आगामी नवम्बर मासमें युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) की भारत-यात्राके समय उस राजकीय यात्राकी याद हमेशा कायम रखने और साथ-साथ भारतके लोगोंको सन्तोष देनेके लिए नमक-कर बिलकुल माफ कर दिया जायेगा। प्रत्येक भारतीय हृदयसे चाहेगा कि इस अफवाहकी बुनियाद मजबूत हो और यह सही निकले।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१०–१९०५

१. डर्बनसे कोई ८०० मील उत्तर पुर्तगाली पूर्वी आफ्रिकाका एक बन्दरगाह।

१२१. सर हेनरी लॉरेंस

इस महान पुरुषका जन्म श्रीलंकामे १८०६ के जूनकी २८ तारीखको हुआ था। वह मथुरा[1] शहरमें जन्मा था, इसलिए उसकी माँने विनोदमें उसका नाम "मथुराका रत्न" रख दिया और वह सचमुच हीरा ही निकला। सन् १८२३ मे वह कलकत्ता आया और बंगाल तोपची पल्टनमें नौकर हो गया। उसको जिम्मेवारीका पहला काम बर्माकी पहली लड़ाईमें[2] दिया गया। इस लड़ाईमें अपना कर्त्तव्य पूरा करते-करते वह बीमार पड़ गया और उसे विलायत जाना पड़ा। वहाँ उसने अपना समय खेल-कूदमें नष्ट करनेके बजाय अध्ययनमें बिताया। सन् १८३० में वह दुबारा भारतमें आया और अपनी पल्टनमें शामिल हो गया। उस समय उसने हिन्दुस्तानी और फारसीका अध्ययन किया। वह अपना निजी समय एकान्तमें बिताता। इसका एक कारण यह था कि वह अपनी माँ के लिए यथासम्भव रुपया बचाना चाहता था। उसको इस बार बहुत बड़ी जिम्मेदारीका काम दिया गया। उसने इसमे अपनी बीमारीके समय इंग्लैडमें जो कुछ सीखा था उसका पूरा उपयोग किया। उसको पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तमें लोगोंपर कर लगानेके सम्बन्धमें सर्वेक्षणका काम सौंपा गया। लॉरेंसके असली गुण इस समय प्रकाशमें आये। वह सैनिक था, फिर भी उसका हृदय बड़ा कोमल और दयालु था। उसे सर्वेक्षणका काम करते हुए गरीब लोगोंके सम्पर्कमें आनेका मौका मिला। इससे वह वहाँके लोगोकी भावना और रस्म-रिवाजोंको समझ सका। वह लोगोंके साथ समानताका भाव रखकर मिलता-जुलता था। वह स्वयं अत्यन्त परिश्रमी और बड़े जीवटका व्यक्ति था; इसलिए उसके मातहतोंमें जो लोग आलसी थे वे उससे द्वेष करते थे। जो आदमी काम न करता उसपर सख्ती करनेमें वह हिचकिचाता नहीं था। एक बार एक सर्वेक्षकने एक बड़ी भूल की। उस भूलको सुधारनेके लिए लॉरेन्सने उसको वहाँ दुबारा जानेका आदेश दिया। उसे जहाँ जाना था वह स्थान दस मील दूर था, इसलिए उसने वहाँ जानेमें आनाकानी की। तब लॉरेंसने उसे डोलीमे बैठाकर भिजवाया। किन्तु वह व्यक्ति जिद्दी था इसलिए इतना होनेपर भी उसने काम करनेसे इनकार कर दिया। तब लॉरेंसने उसको एक आमके पेड़पर बिठा दिया और नीचे नंगी तलवारें देकर दो पहरेदार खड़े कर दिये। सर्वेक्षक जब भूख और प्याससे व्याकुल हो गया तब उसने लॉरेंस साहबसे क्षमा माँगते हुए काम करना मंजूर किया और नीचे उतरनेकी अनुमति माँगी। इसके बाद वह सुधर गया और लॉरेंसकी मातहतीमें बहुत अच्छा काम करने लगा।

हम लोगोंने सुना है कि पुराने जमानेमें भाई-भाईके लिए, मित्र-मित्रके लिए, माँ-बेटेके लिए, बेटा माँ-बापके लिए और स्त्री पुरुषके लिए प्राण देनेको तैयार रहते थे। वही लॉरेंसने इस जमानेमें करके बताया है। अफगानिस्तानकी लड़ाईमें उसका बडा भाई गिरफ्तार हो गया। अफगान सरदारने उसको कुछ दिनकी छुट्टी दी। छुट्टी पूरी होनेपर वह लौटकर जानेके लिए बँधा था। भाईकी सेवाएँ अधिक उपयोगी है, ऐसा सोचकर लॉरेंसने उसके बदले खुद जेलमें जानेका प्रस्ताव किया। यह उसके भाईने स्वीकार नही किया; परन्तु लॉरेंस जो कह चुका था वह करके रहा।

१. श्रीलंकाके दक्षिण तटपर एक बन्दरगाह।

२. १८२४-६।

जब लॉरेंस नेपालमें राजदूत बना, उस समय उसकी भली पत्नी अपना जीवन भलाईके कामोमें बिताया करती थी। उन दोनोंने मिलकर अपने धनसे यूरोपीय सैनिकोंके बच्चोंके संवर्धन तथा शिक्षा-दीक्षाके लिए हिमालयकी तराईमे एक विशाल सदन बनवाया। उसके बाद तो ऐसे सदन भारतमें जगह-जगह बनाये गये है; और उन सभीको "लॉरेंस सदन" कहा जाता है। सन् १८४६ में सिख-युद्ध हुआ। इसमें लॉरेंसने बड़ी बहादुरी दिखाई। इस समय उसकी पत्नी बीमार थी। उसे युद्धपर जानेका आदेश मिला। आदेशके मिलते ही बीमार स्त्रीको छोड़कर वह चौबीस घंटेके अंदर युद्धमें जानेके लिए तैयार हो गया। युद्धके बाद शाही राजदूतके रूपमें उसने लाहौरमें बड़ा अच्छा काम किया। इससे उसको 'सर' का खिताब दिया गया। सन् १८४९ में जब पंजाब जोड़ देनेका इरादा हुआ तब लॉर्ड डलहौजी जैसे गवर्नर जनरलके साथ अकेले लॉरेंसने टक्कर ली। वह अपनी बातमें सफल नही हुआ। फिर भी गवर्नर जनरलको उसपर इतना अधिक विश्वास था कि उसने पंजाबमे मुख्य उत्तरदायित्वका काम उसीको सौपा। वह सिख लोगोके बड़े घनिष्ठ सम्पर्कमें आया था। वे लोग उसे बहुत चाहते थे। इसीसे पंजाब शान्त हुआ।

लॉरेंसने सबसे महत्त्वपूर्ण काम १८५७ के विप्लवके समय किया। इस समय तक लॉरेंसका स्वास्थ्य टूट चुका था और उसको छुट्टी मंजूर कर दी गई थी। फिर भी गदर शुरू हो जानेसे वह अपनी छुट्टीका लाभ न लेकर लखनऊ गया। कहा जाता है कि उसकी सूझबूझ और बहादुरीकी बदौलत सैनिक उसे बहुत मानते थे। इसीसे लखनऊमें अंग्रेजोंकी इज्जत बची। लखनऊके घेरेमें ९२७ यूरोपीय और ७६५ देशी सैनिक थे। लॉरेंस दिन-रात काम करता था और घिरे हुए लोगोसे भी काम लेता था। जिस कोठरीमे वह बैठकर काम करता था उसीपर गोले जाकर गिरते थे और वह उनकी परवाह नही करता था। १८५७ की जुलाईकी दूसरी तारीखको गोलेके एक टुकडेसे वह जख्मी हो गया। डॉक्टरोने उससे कहा कि घाव घातक है और उसका ४८ घंटेसे अधिक जिन्दा रहना संभव नही है। इस समय उसको असहनीय कष्ट हो रहा था, फिर भी वह आदेश देता रहा और ४ तारीखको इस प्रार्थनाके साथ उसने अपने प्राण त्याग दिये: "हे परमेश्वर, तू मेरा दिल साफ रख। तू ही महान है। तेरा यह जगत किसी दिन जरूर पाप-रहित होगा। मै स्वयं बालक हूँ, परन्तु तेरे बलसे बलवान बन सकता हूँ। तू मुझे सदैव नम्रता, न्याय, सुविचार और शान्ति सिखाना। मै मनुष्योके विचार नही चाहता। तू मेरा न्यायाधीश है और तू मुझे अपने विचार सिखाना, क्योंकि मैं तुझसे डरता हूँ।" वह भारतीयोंसे बहुत प्रेम करता था। विद्रोहके समय जो अत्याचार किये जाते थे वह उनकी बहुत निन्दा करता था और वह मानता था कि प्रत्येक अंग्रेज भारतका न्यासी है। न्यासीके रूपमें अंग्रेजोका काम भारतको लूटना नही, बल्कि लोगोंको समृद्ध बनाना, स्वशासन सिखाना और देशको खुशहाल कर भारतीयोको सौंप देना है। लॉरेंस जैसे व्यक्ति अंग्रेज जातिमें पैदा हुए हैं, इसीसे वह आगे बढी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१०-१९०५

१२२. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अक्टूबर १८, १९०५

चि० छगनलाल,

मुझे श्री किचिनका तार मिला है। वे चाहते हैं कि मैं यहाँसे ऐसे रवाना होऊँ जिससे कमसे कम रविवारको फीनिक्समें रह सकूँ। उनका कहना है कि उन्होंने पत्र भी भेजा है जो शायद कल शाम तक मिलेगा। मैं पत्र देख लेनेपर आने-न-आनेका निर्णय करूँगा। अगर आया तो शुक्रवारके सवेरे रवाना होकर वहाँ[1] दोपहरको १ बजकर १६ मिनटपर पहुँचूंगा और १–२० पर फीनिक्सकी गाड़ी पकड़ूँगा। तुम स्टेशनपर आ जाना और मेरा टिकिट लेकर तैयार रहना। अपना टिकिट वापसी खरीद सकते हो। सोमवारको पहली गाड़ीसे मुझे फीनिक्ससे चल देना चाहिए। डर्बनके मुवक्किल कुड़कुड़ायेंगे; मगर क्या किया जाये! तुम्हे मुझसे जो कुछ पूछना हो सब कागजपर लिख रखना, ताकि करने या कहनेकी कोई बात छूट न जाये। डर्बनमें लोगोंको खबर कर सकते हो कि मुझे सम्भवत: इस तरह लौटना है और उन्हें यह भी कहना कि सोमवारको कुछ घंटे छोड़कर उन्हें ज्यादा वक्त देना मुमकिन नहीं है। मेरे लिए अधिक रुकना गैर-मुमकिन है। मुझे कुछ और कहना जरूरी नहीं है। श्री वेस्ट और दूसरे लोगोंको सूचना दे देना।

तुम्हारा शुभचिन्तक
मो० क० गांधी

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मारफत **इंडियन ओपिनियन**
फीनिक्स

मूल अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२५९) से।

१२३. परवानेका एक और मामला

श्री दादा उस्मान[2] १५ वर्ष या इससे भी अधिक समयसे नेटालमें रहते हैं। वे जमीनके भी मालिक हैं और गणतन्त्र राज्यके जमानेमें एक सामान्य व्यापारीकी हैसियतसे फ्राईहीडमें आकर बसे थे। युद्ध छिड़नेतक तो उन्हे फ्राईहीडमें विना किसी रोक-टोकके व्यापार करने दिया गया, परन्तु अब, तीन वर्षसे अधिक समय तक ब्रिटिश सत्ताके साथ अकेले संघर्ष करनेके बाद वे अपने-आपको विनाशके समीप खड़ा पाते हैं। और खूबी यह है कि दादा उस्मान ब्रिटिश प्रजा है! यदि कोई विदेशी यह पूछे कि किसी ब्रिटिश प्रजाजनके विरुद्ध, अपराधी न होते हुए भी उसको नागरिक अधिकारोंसे वंचित करनेके उद्देश्यसे, ब्रिटिश शासन-तन्त्रका प्रयोग क्यों

१. डर्बन।

२. देखिये खण्ड ३, पृष्ठ १८।